शरत्चन्द्र

बिराज बहू

H
891.443
C392Bi

बिराज बहू

बिराज बहू

शरत्चन्द्र

भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली-110032

H
891.443
C 392 Bi

77896
12/3/92

प्रकाशक
भारती भाषा प्रकाशन
518/6 वी, विश्वासनगर
शाहदरा, दिल्ली-110032

संस्करण 1990

Library IIAS, Shimla
H 891.443 C 392 Bi
00077896

Rs. 30 .0(

मुद्रक
प्रिंट आर्ट

हुगली जिले के सप्तग्राम में नीलांबर और पीतांबर चक्रवर्ती दो भाई थे। उस तरफ मुर्दे जलाने, कीर्तन करने, ढोल बजाने और गाँजा पीने में नीलांबर जैसा कोई नहीं था। उसके ऊँचे पूरे गोरे शरीर में असाधारण बल था। गाँव में जैसे उसी के परोपकार में प्रसिद्धि थी, गँवार के रूप में वैसी ही बदनामी भी थी। लेकिन छोटे भाई पीतांबर की प्रकृति बिल्कुल भिन्न थी। वह ठिगना और दुबला-पतला था। किसी के घर गमी होने की ख़बर सुनकर ही शाम के बाद उसका शरीर न जाने कैसा होने लगता था! अपने भाई की तरह ऐसा मूर्ख भी नहीं था, और गँवारपन के पास भी नहीं फटकता था। सवेरे ही खा-पीकर, बगल में बस्ता दबाकर घर से निकल जाता था और हुगली की कचहरी के पश्चिम ओर के एक पेड़ के नीचे आसन जमा देता था। दिन भर अर्ज़ियाँ लिखकर जो कुछ कमाता था, वह शाम के पहले ही घर आकर अपने बक्स में बन्द कर देता था। रात को घर के द्वार, खिड़की वग़ैरह अपने हाथ से बन्द करता और पत्नी से फिर जाँच करा लेता तब सोता था।

आज सवेरे नीलांबर चंडीमण्डप के एक ओर बैठा तमाखू पी रहा था। इसी समय उसकी कुँआरी बहन हरिमती चुपके से आकर पीठ के पीछे घुटने टेककर बैठ गई और भाई की पीठ में मुँह छिपाकर रोने लगी। नीलांबर ने हुक्का दीवाल के सहारे रख दिया और अन्दाज से एक हाथ

बहन के सिर पर रखकर प्यार से कहा—आज सवेरे-सवेरे तू रोती क्यों है बहन ?

हरिमती मुँह रगड़कर भाई की पीठ-भर में आँसू लगाकर बोली—भाभी ने मेरे गाल मींड़ दिये हैं और कानी कहकर गाली दी है।

नीलांबर हँसकर बोला— अरे, तुझे कानी कहती है ? ऐसी दो आँखें रहने पर जो कानी कहती है, वही कानी है। किन्तु गाल क्यों मीड़ दिये ?

हरिमती ने रोते-रोते कहा—यों ही !

"यों ही ? अच्छा चल, देखूँ तो—" कहकर हरिमती का हाथ पकड़े हुए नीलांबर ने घर के भीतर जाकर पुकारा—विराज बहू !

बड़ी बहू का नाम व्रजरानी है। नौ वर्ष की अवस्था में उसका व्याह हुआ था, तब से सब लोग उसे विराज बहू कहकर पुकारते हैं। अब उसकी अवस्था १६-२० वर्ष की होगी। सास के मरने के बाद से वही इस घर की गृहिणी है। व्रजरानी असाधारण सुन्दरी है। चार-पाँच साल पहले उसके एक पुत्र हुआ था, जो सौर में ही मर गया। तबसे वह निःसन्तान है। वह रसोईघर में काम कर रही थी। पति के पुकारने पर चौके से बाहर आकर भाई-बहन को एक साथ देखकर जल उठी। बोली—कलमुँही, उल्टे नालिश करने गई थी ?

नीलांबर ने कहा—क्यों न जाय ? तुमने उसे कानी कह दिया, जो सरासर झूठ है। लेकिन तुमने गाल क्यों मींड़ दिये ?

विराज ने कहा—इतनी बड़ी हो गई है, सोकर उठी, न मुँह धोया, न धोती बदली, गोशाला में घुसकर बछड़ा खोल दिया और मुँह बाये खड़ी देखती रही। आज एक बूँद दूध नहीं मिला। इसे पीटना चाहिए।

नीलांबर ने कहा— नहीं जी, नौकरानी को ग्वाले के यहाँ से दूध लाने के लिए भेज देना चाहिए।—अच्छा बहन, तूने एकाएक बछड़ा क्यों खोल दिया ? यह काम तो तेरा नहीं है।

हरिमती भाई के पीछे खड़ी। धीरे से बोली—मैंने समझा कि दूध दुहा जा चुका है।

"अब और किसी दिन ऐसा समझा तो ठीक कर दूंगी !" कहकर

बिराज चौके में जाने को हुई कि नीलांबर ने हँसकर कहा—इस उमर में तुमने भी एक दिन माँ का पालतू तोता उड़ा दिया था। पिंजड़े की खिड़की यह समझकर खोल दी थी कि पिंजड़े के भीतर से तोता उड़ नहीं सकता। याद है ?

वह घूमकर खड़ी हो गई। हँसकर बोली—याद है। मगर तब मैं इतनी बड़ी नहीं थी, इससे छोटी थी। यों कहकर काम करने चली गई।

हरिमती ने कहा—चलो न भैया, बाग में चलकर देखें, आम पकने लगे हैं या नहीं।

नीलांबर ने कहा—अच्छा, चल बहन।

इसी बीच में नौकर ने भीतर आकर कहा—नारायन बाबा बैठे हैं।

नीलांबर ने कुछ अप्रतिभ होकर धीमे स्वर में कहा— इस बीच ही आकर बैठ गये ?

विराज ने चौके के भीतर से सुन लिया। उसने तेज़ी से निकलकर, चिल्लाकर कहा—बाबा से जाने के लिए कह दो। फिर स्वामी की ओर लक्ष्य करके कहा—अगर तुम सवेरे ही यह सब पीना शुरू कर दोगे तो मैं सिर पटककर जान दे दूंगी। आजकल यह सब क्या हो रहा है ?

नीलांबर कुछ नहीं बोला, चुपचाप बहन का हाथ पकड़कर खिड़की के द्वार से बगिया में चला गया।

इस बाग में एक तरफ से सरस्वती नदी की एक पतली धारा मुमूर्ष गंगा-यात्री की क्षीण साँस की तरह बाहर जा रही थी। उसमें सेवार भरा हुआ था। बीच-बीच में गाँव के लोगों ने पानी के लिए कुइयाँ खोद रक्खीं थीं। उसी के आस-पास सेवार से युक्त उथले तले में खुली हुई सीपें स्वच्छ पानी के भीतर से असंख्य मक्खियों की तरह धूप में चमक रही थीं। किनारे पर एक काला पत्थर पास ही के समाधिस्तूप की दीवार से किसी अतीत दिन की वर्षा के तेज़ बहाव के कारण खिसककर यहाँ आ पड़ा था। इस घर की बहुएँ रोज़ शाम को उसी पत्थर के एक सिरे पर उस मृत आत्मा के लिए दीपक जलाकर रख जाती थीं। उसी पत्थर के एक किनारे बहन का हाथ पकड़े हुए नीलांबर आकर बैठ गया। नदी के दोनों किनारों पर बड़े-बड़े आम के बाग और बाँस के झाड़ थे। दो-एक

बहुत पुराने पीपल और बर्गद के पेड़ नदी के पानी की सतह तक झुककर अपनी शाखाएँ फैलाए हुए थे। इन डालों के ऊपर न जाने कितने समय से कितने ही पक्षियों ने अपने घोंसले बनाये हैं, कितने बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा किया है, कितने ही फल खाये और कितने ही गीत गाये हैं। उन्हीं की छाया में बैठकर दोनों भाई-बहन कुछ देर चुपके बैठे रहे।

एकाएक हरिमती अपने भाई की गोद के पास और भी खिसक आकर बोली—अच्छा भैया, भाभी तुमको बोष्टम ठाकुर[1] कहकर क्यों पुकारती है ?

अपने गले की तुलसी की माला दिखाकर, हँसकर, नीलांबर ने कहा—मैं बोष्टम जो हूँ, इसी से कहती है।

हरिमती को विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा—वाह, तुम क्यों बोष्टम होगे ? वे तो भीख माँगते हैं। अच्छा दादा, वे भीख क्यों माँगते हैं ?

नीलांबर ने कहा—उनके पास नहीं है, इससे माँगते हैं।

हरिमती ने भाई के मुँह की ओर देखते हुए कहा—उनके कुछ नहीं है ? बाग़ नहीं, पोखर नहीं, धान की कोठार नहीं—कुछ भी नहीं ?

नीलांबर ने प्यार से बहन के सिर के बाल ज़रा हिलाकर कहा—कुछ भी नहीं है। बोष्टम होने पर अपने पास कुछ भी न रखना चाहिए।

हरिमती ने कहा—तो फिर सभी लोग उनको थोड़ा-थोड़ा क्यों नहीं देते ?

नीलांबर ने कहा—तेरे दादा ने ही उन्हें क्या दिया है रे ?

हरिमती ने कहा—तो क्यों नहीं देते दादा ? हमारे तो इतना सब है।

नीलांबर ने हँसकर कहा—तब भी तेरा दादा नहीं दे सकता। लेकिन तू जब राजा की बहू होगी बहन, तब देना।

बालिका होने पर भी यह सुनकर हरिमती लजा गई। अपने भाई की

---

१. बंगाल के वैष्णव सम्प्रदाय के लोग एकतारा बजाकर भजन गा-गा कर द्वार-द्वार भिक्षा माँगते फिरते हैं। ये बोष्टम कहलाते हैं और स्त्रियाँ बोष्टमी। वैष्णव का ही बंगाली उच्चारण बोष्टम है।

छाती में मुँह छिपाकर बोली—जाओ !

नीलांबर ने दोनों हाथों से दबाकर उसका माथा चूम लिया। बे-माँ-बाप की इस छोटी बहन को वह बेहद प्यार करता था। सात साल पहले जब हरिमती तीन साल की थी, तभी उसकी विधवा माता उसे बड़ी बहू और बेटे को सौंपकर परलोक सिधार गई थी। तबसे नीलांबर ने ही उसे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है। नीलांबर ने काम पड़ने पर गाँव भर के रोगियों की सेवा की है, मुर्दे जलाये हैं, कीर्तन किया है, गाँजा पिया है, लेकिन क्षणभर के लिए भी अपनी माता की इस मरते समय की आज्ञा की अवहेलना नहीं की। इसी तरह उसने हरिमती को कलेजे से लगाकर पाला-पोसा है। इसी से हरिमती माता की तरह बिना संकोच के दादा की छाती में मुँह छिपाकर चुप हो रही।

इतने में पुरानी दासी की आवाज सुन पड़ी—पूँटी, भाभी दूध पीने के लिए बुला रही हैं, आओ।

पूँटी अर्थात् हरिमती ने सिर उठाकर विनती के स्वर में कहा—दादा, तुम कह न दो कि अभी दूध नहीं पियूँगी।

क्यों नहीं पियेगी बहन ?

हरिमती ने कहा—अभी मुझे बिल्कुल भूख नहीं है।

नीलांबर ने हँसकर कहा—मैं तो यह मान लूँगा, लेकिन जो गाल मींड़ देती है, वह तो न मानेगी !

नौकरानी ने वहीं से फिर पुकारा—पूँटी !

नीलांबर ने चटपट बहन को खड़ा करके कहा—जा, कपड़े बदलकर दूध पी आ बहन, मैं यहीं बैठा हूँ।

हरिमती मुँह लटकाकर धीरे-धीरे चली गई।

उसी दिन दोपहर को विराज ने थाली परोसकर पति के सामने रख दी और थोड़ी दूर बैठकर कहा—अच्छा तुम्हीं बताओ, मैं भात के साथ क्या चीज़ रोज-रोज तुम्हारी थाली में परोसूं ? यह न खाऊँगा, वह न खाऊँगा, वह भी न खाऊँगा, अन्त में मछली भी छोड़ दी !

नीलांबर ने कहा—यह इतनी तरकारी तो है !

विराज ने कहा—इतनी, कितनी है ! हेर-फेरकर कभी यह, कभी वह !

खाली इस साग-पात के साथ क्या मर्द खा सकते हैं ! यह कोई शहर तो है नहीं कि सब चीजें मिल जायँ। यह तो देहात है। यहाँ तो बस वही पोखर की मछली मिलती है। उसे भी खाना तुम छोड़ बैठे हो।—अरे पूँटी कहाँ गई ? आकर पंखे से हवा कर।—ना, सो नहीं होगा।—देखो, आज अगर थाली में कुछ भी पड़ा रहेगा तो मैं तुम्हारे पैरों पर सिर पटककर जान दे दूंगी।

नीलांबर कुछ बोला नहीं, हँसता हुआ चुपचाप खाता रहा।

विराज ने झल्लाकर कहा—हँसते क्या हो ? मेरी देह में आग लग जाती है। दिन-दिन तुम्हारी खुराक घटती जाती है, यह भी खबर है ? हँसली की हड्डी दिखाई देने लगी है, इधर ज़रा देखो।

नीलांबर ने कहा—मैंने सब देखा है। यह तुम्हारे मन का भ्रम है।

विराज ने कहा—मन का भ्रम है ? कभी नहीं। जानते हो, अगर तुम एक दाना भी कम खाते हो, तो मैं बता दे सकती हूँ। रत्ती-भर भी रोग हो, तो शरीर पर हाथ रखकर ही समझ जाती हूँ, सो जानते हो ?—जा तो पूँटी, पंखा रखकर चौके के भीतर से अपने दादा के पीने का दूध ले आ।

हरिमती एक ओर खड़ी भाई को हवा कर रही थी। वह पंखा रखकर दूध लेने चली गई।

विराज फिर बोली—देखो, नेम-धरम करने के लिए बहुत दिन पड़े हैं। आज उस घर की मौसी आई थीं। उन्होंने सुनकर कहा कि इतनी थोड़ी उमर मे मछली छोड़ देने से आँखों की जोत मारी जाती है, शरीर की शक्ति घट जाती है।—ना, ना, यह न होगा। अन्त में न जाने क्या का क्या हो जाय ! मैं तुमको मछली नहीं छोड़ने दूंगी।

नीलांबर हँस पड़ा, बोला—अच्छा अब मेरे बदले तू ही खूब मछली खाया कर, तो सब ठीक हो जायगा।

विराज ने चिढ़कर कहा—भंगी-चमारों की तरह फिर वही तू-तकार !

नीलांबर ने अप्रतिभ और लज्जित होकर कहा—याद नहीं रहता बिराज ! बचपन का अभ्यास ठहरा, छूटता नहीं। याद है, कितनी दफे तुम्हारे कान उमेठे हैं मैंने ?

विराज होठों में दबी हुई हँसी के साथ बोली—याद नहीं है ? मुझे

छोटी पाकर तुमने क्या कुछ कम अत्याचार किया है! वाबूजी से छिपाकर, माँ की आँख वचाकर तुम मुझसे कितनी चिलमें भरवाते थे! तुम क्या कुछ कम दुष्ट हो!

नीलांवर ठहाका मारकर हँस पड़ा। उसने कहा—आज भी वे सव वातें याद हैं? मगर मैं तभी से तुम को प्यार करने लगा था।

विराज हँसी दवाकर वोली—जानती हूँ। अव चुप करो—पूँटी आ रही है।

हरिमती ने आकर दूध का कटोरा भाई की थाली के पास रख दिया और फिर पंखा लेकर हवा करने लगी। विराज ने उठकर हाथ धोये और फिर पति के पास आकर बैठ गई, वोली—ला पूँटी, पंखा मुझे दे दे, तू जाकर खेल।

पूँटी चली गई। विराज पंखा झलते-झलते वोली—सच कहती हूँ, इतनी छोटी अवस्था में व्याह होना ठीक नहीं।

नीलांवर ने पूछा—क्यों, ठीक क्यों नहीं? मैं तो कहता हूँ कि लड़कियों का वहुत छोटी उमर में ही व्याह हो जाना अच्छा है।

विराज सिर हिलाकर वोली—नहीं। मेरी वात और है, क्योंकि मैं तुम्हारे हाथ पड़ी थी। इसके सिवा मेरे कोई शरारती दुष्ट ननद या जिठानी भी नहीं थी। मैं दस साल की उमर में ही गृहिणी वन गई थी। लेकिन मैं और लोगों के घर भी तो देखती हूँ। छोटी उमर में ही जो वक-झक और मार-पीट शुरू हो जाती है, वह वड़ी होने पर भी वंद नहीं होती। इसी से तो मैं अपनी पूँटी के व्याह का अभी नाम ही नहीं लेती। नहीं तो अभी परसों ही पूँटी के व्याह के लिए राजेश्वरीतला के घोषाल वावू के घर से 'घटकी' आई थी। लड़की जेवर से लाद दी जायगी और नगद एक हज़ार रुपये! तो भी मैं कहती हूँ कि नहीं, अभी दो साल और रहने दो।

---

१. बंगाल में घटक या घटकी वे कहलाते हैं, जो लड़की-लड़कों के संवंध ठीक कराते हैं। वे सैंकड़ों खानदानों का वंश-परिचय और जन्म-पत्रियों की नकलें अपने संग्रह में रखते हैं। इनका पेशा ही यह होता है।

—अनुवादक

नीलांबर ने आश्चर्य से सिर उठाकर कहा—तुम क्या रुपये लेकर लड़की बेचोगी ?

विराज ने कहा—रुपये क्यों न लूँगी ? अगर मेरे एक लड़का होता तो हमें रुपये देकर घर में बहू लानी पड़ती या नहीं ? तुम लोग क्या मुझे तीन सौ रुपये देकर मोल नहीं लाये थे ? देवर के व्याह में क्या पाँच सौ रुपये नहीं देने पड़े ? ना ना, तुम इन सब बातों में दखल न दो। हम लोगों की जो रीति है, मैं वही करूँगी।

नीलांबर ने और भी विस्मित होकर कहा—यह तुम्हें किसने बताया कि हम लोगों की रीति लड़की बेचना है ? यह ठीक है कि हम लोग लड़की वाले को रुपये देते हैं, लेकिन, अपनी लड़की के व्याह में एक पैसा भी नहीं लेते। मैं पूँटी को दान करूँगा।

स्वामी के चेहरे और आँखों का भाव देखकर विराज हँस पड़ी। बोली—अच्छा-अच्छा, यही करना। अब खा लो, कोई बहाना करके उठ न जाना।

नीलांबर भी हँस दिया। बोला—क्या मैं बहाना करके उठ जाता हूँ ?

विराज ने कहा—नहीं, एक दिन भी नहीं। यह दोष तो तुम्हारे शत्रु भी नहीं दे सकेंगे ! इसके लिए मुझे कितने दिन उपास करके काटने पड़े हैं, सो छोटी बहू जानती है—अरे यह क्या ! बस खा चुके ?

विराज ने पंखा फेंक दिया और दूध का कटोरा जोर से पकड़कर बोली—तुम्हें मेरे सिर की कसम, उठो नहीं।—पूँटी, जल्दी जा, छोटी बहू से दो संदेश तो ले आ।—नहीं-नहीं, गर्दन हिलाने से कुछ न होगा। तुम्हारा पेट अभी नहीं भरा। मैया री, कहती हूँ कि उठ जाओगे तो मैं भोजन न करूँगी। कल रात को मैंने एक बजे तक जागकर संदेश बनाये हैं।

हरिमती दौड़ती हुई गई और एक तश्तरी में बहुत से संदेश लाकर नीलांबर के सामने रख दिये !

नीलांबर हँस पड़ा। बोला—अच्छा तुम्हीं बताओ, इतने संदेश क्या मैं इस समय खा सकता हूँ ?

विराज ने मिठाई की मात्रा देखकर, सिर झुकाकर कहा—बातचीत करते-करते अन्यमनस्क होकर खाओ, खा सकोगे।

नीलांबर ने कहा—फिर भी खाना ही पड़ेगा ?

विराज ने कहा—हाँ। या तो मछली खाना न छोड़ने पाओगे, नहीं तो यह चीज कुछ अधिक मात्रा में खानी पड़ेगी।

तश्तरी पास खींचकर नीलांबर ने कहा—तुम्हारे इस खिलाने के जुल्म के मारे तो जी चाहता है कि किसी वन में जाकर वस जाऊँ !

पूँटी बोल उठी,—मुझको भी भैया...।

बिराज ने धमकाकर कहा,—चुप रह कलमुंही ! खायेंगे नहीं तो जियेंगे कैसे ? सुसराल में जाकर पता पड़ेगा इस शिकायत का।

२

लगभग डेढ़ महीने बाद की बात है। पाँच दिन भोग चुकने के बाद आज सवेरे से नीलांबर को बुखार न था। बिराज ने बासी कपड़े बदलाकर अपने हाथ से धुले कपड़े पहिनाकर फ़र्श पर बिछौना डालकर उसे लिटा दिया था। वह खिड़की से बाहर एक नारियल के पेड़ को चुपचाप पड़ा देख रहा था। हरिमती उसके पास बैठी धीरे-धीरे पंखा झल रही थी। थोड़ी देर में ही बिराज नहा-धोकर भीगे बाल पीठ पर बिखराये, रेशमी धोती पहने उस कोठरी में दाखिल हुई। सारी कोठरी जैसे प्रकाशित हो उठी। नीलांबर ने उसकी ओर देखकर कहा—यह क्या ?

बिराज ने कहा—पंचानन्द बाबा की पूजा मानी थी; जाऊँ, पूजा का सामान भेज दूं। यों कहकर सिरहाने घुटनों के बल बैठकर हाथ से स्वामी के माथे की गर्मी अनुभव करके कहा—ना, बुखार नहीं है। नहीं जानती, इस साल शीतला मैया के मन में क्या है ? घर-घर क्या हाल हो रहा है ? आज सवेरे ही सुना कि यहाँ के मोती मोड़ल के लड़के की सारी देह में माता की कृपा हुई है। देह-भर में तिल रखने को जगह नहीं।

नीलांबर ने व्यस्त होकर पूछा—मोती के किस लड़के को शीतला निकली हैं ?

बिराज ने कहा—बड़े लड़के को।—माँ शीतला, गाँव को शीतल करो माता ! आहा, उसका यही लड़का तो कमाता-धमाता है ! पिछले सनीचर

की रात को पिछले पहर अचानक नींद उचट जाने से तुम्हारे शरीर पर हाथ पड़ जाने से देखा, शरीर जैसे जला जा रहा है। भय से छाती का खून सूख कर काठ हो गया। उठकर बड़ी देर तक रोती रही। उसके बाद मानता मानी कि माँ शीतला, जब इन्हें अच्छा कर दोगी, तभी तुम्हारी पूजा चढ़ाकर फिर कुछ खाऊँ-पियूँगी; नहीं तो प्राण दे दूँगी। कहते-कहते विराज की दोनों आँखें आँसुओं से भीग गईं और दो बूंद आँसू गिर पड़े।

नीलांबर ने विस्मित होकर कहा—तुम क्या उपवास किये हुए हो ?

पूँटी ने कहा—हाँ दादा, भाभी कुछ नहीं खाती। सिर्फ़ शाम को एक मुट्ठी कच्चे चावल और लोटा-भर पानी पिया था। किसी की बात नहीं सुनती।

नीलांबर ने बहुत ही असन्तुष्ट होकर कहा—क्या यह तुम्हारा पागलपन नहीं है ?

विराज ने धोती के छोर से अपने आँसू पोंछते हुए कहा—पागलपन नहीं है ? असल पागलपन है ! अगर तुम नारी होकर जनमते तो जानते कि पति क्या चीज़ है ! तब समझ पाते कि ऐसे दिनों में उसे बुखार आने पर छाती के भीतर क्या होने लगता है !—यह कहकर जा रही थी कि फिर खड़ी होकर बोली—पूँटी, महरी पूजा चढ़ाने जा रही हैं। साथ जाना चाहे तो जल्दी जाकर नहा ले, जा।

पूँटी खुशी से उठ बैठी, बोली—जाऊँगी भाभी !

तो फिर देर न कर। जा, अपने दादा के लिए देवता से अच्छी तरह वरदान माँगना।

पूँटी तेजी से चल दी। नीलांबर ने हँसकर कहा—वह भी माँग सकेगी, बल्कि तुम से भी ज्यादा अच्छी तरह।

बिराज ने हँसकर गर्दन हिलाकर कहा—यह न समझो। चाहे भाई हो, चाहे माँ-बाप, औरतों के लिए पति से बढ़कर और कोई नहीं। भाई या माँ-बाप के न रहने पर ज़रूर ही बहुत दुःख और कष्ट होता है, लेकिन पति के न रहने से तो स्त्री का सर्वस्व ही लुट जाता है। यह जो, आज पाँच दिन से बिना खाये-पिये हूँ, लेकिन चिन्ता और दुर्भावना के मारे एक बार भी खयाल नहीं हुआ कि उपासी हूँ—लेकिन बुलाओ तो अपनी किसी बहन

को, देखूं कैसे···

नीलांबर जल्दी से बाधा देकर बोला—फिर !

विराज बोली—तो फिर कहते क्यों हो ? पागलपन किया है या क्या किया है, सो मैं जानती हूँ या देवता जानते हैं, जिन्होंने मेरी बात रक्खी है। अगर तुम्हें कुछ हो जाता तो मैं एक दिन भी न जीती। माँग का सेंदुर पुँछने के पहले ही यह माथा फोड़ डालती। शुभ-यात्रा के समय लोग मुँह न देखेंगे, शुभ कार्य में बुलाकर पूछेंगे नहीं, इन दोनों खाली हाथों को लोगों के सामने निकाल नहीं सकूँगी, लज्जा से सिर से आँचल हटा न सकूँगी, छिः-छिः, वह जीना भी कोई जीना है ! उसे ज़माने में जो जलाकर मार डालते थे, सो ही ठीक था ! तब मर्द लोग स्त्रियों के दुःख-कष्ट को जानते-समझते थे, आजकल नहीं समझते।

नीलांबर ने कहा—नहीं, नहीं समझते, तुम जाकर समझा दो।

विराज ने कहा—हाँ, मैं समझा सकती हूँ। केवल मैं ही क्यों, तुम को पाकर जो कोई खो देगी, वही समझा दे सकेगी, मैं अकेली नहीं। जाने दो—मैं भी यह सब क्या बके जा रही हूँ—कहकर विराज हँस उठी। इसके बाद झुककर फिर एक बार पति की छाती का और माथे का उत्ताप हाथ से अनुभव करके बोली—देह में कहीं दर्द तो नहीं है ?

नीलांबर ने गर्दन हिलाकर कहा—नहीं।

विराज ने कहा—फिर कोई डर की बात नहीं। आज मुझे भूख लग रही है; जाऊँ, अब कुछ राँधने की तैयारी करूँ। तुम से सच कहती हूँ, आज अगर कोई मेरा एक हाथ भी काट डाले तो शायद मुझे क्रोध नहीं आवेगा।

इसी समय यदु नौकर ने बाहर से पुकार कर कहा—माँजी, क्या वैदजी को बुलाकर लाना होगा ?

नीलांबर ने कहा—ना, ना, अब कोई ज़रूरत नहीं है।

तो भी नौकर गृहिणी की अनुमति के लिए खड़ा रहा। विराज ने यह देखकर कहा—नहीं, जा बुला ला। एक बार और अच्छी तरह देख जायँ।

तीन-चार दिन के बाद, आरोग्य-लाभ करके नीलांबर बाहर के चण्डी-मण्डप में बैठा हुआ था। इतने में मोती मोड़ल आकर रोने लगा—दादा

ठाकुर, तुम एक वार चलकर न देखोगे तो मेरा छिमन्त अव नहीं वचेगा। एक वार पैरों की रज दो देवता, तो शायद अव की वह उठ खड़ा हो।—और कुछ वह कह नहीं सका, व्याकुल होकर रोने लगा।

नीलांवर ने पूछा—देह में क्या वहुत दाने निकले हैं ?

मोती आँसू पोंछता हुआ कहने लगा—सो क्या वताऊँ ! मैया जैसे एकदम भरी पड़ी हैं ? नीची जाति में जन्म लिया है वावा, क्या करना पड़ता है, कुछ भी तो नहीं जानता। ज़रा चले चलिए, कहकर उसने दोनों पैर पकड़ लिये।

नीलांवर ने आहिस्ते से पैर छुड़ाकर कोमल स्वर में कहा—कुछ डर नहीं है मोती, तू जा, मैं पीछे आऊँगा।

उसके रोने-धोने के आगे नीलांवर अपनी अस्वस्थता की वात न कह सका। सभी तरह के रोगियों की सेवा करके इस विषय में वह इतना अधिक दक्ष हो गया था कि आस-पास के गाँवों में किसी को भी कोई कठिन रोग होने पर उसे एक वार दिखाये विना, उसके मुँह से सान्त्वना और आश्वास की वाणी सुने विना रोगी के आत्मीय स्वजनों को किसी तरह धीरज न आता था। नीलांवर खुद भी यह जानता था। वह यह समझता था कि वहाँ के अपढ़ अशिक्षित लोग डॉक्टर-वैद्य की दवा की अपेक्षा उसके पैरों की धूल, उसके हाथ के पढ़े पानी पर अधिक श्रद्धा रखते हैं, इसीलिए वह कभी किसी को विमुख न लौटा सकता था। मोती मोड़ल, और एक वार रोकर और एक वार पैरों की धूल देने की प्रार्थना करके, आँखें पोंछता हुआ चला गया। नीलांवर उद्विग्न होकर सोचने लगा। यद्यपि वह अव भी कुछ कमज़ोर था, लेकिन सो कुछ नहीं। सोचने लगा कि घर से वाहर कैसे निकले ? विराज से वह वहुत डरता था। उसके सामने यह वात कैसे जवान पर लावे ?

ठीक इसी समय भीतर के आँगन से हरिमती ने ज़ोर से पुकार कर कहा—दादा, भाभी भीतर आकर सोने के लिए कहती हैं।

नीलांवर ने जवाव नहीं दिया।

क्षण-भर वाद ही हरिमती खुद आकर हाज़िर हो गई। वोली—सुनाई नहीं पड़ा दादा ?

नीलांबर ने गर्दन हिलाकर कहा—नहीं।

हरिमती ने कहा—वही थोड़ा-सा जब खाया था, तब से यहीं बैठे हो! भाभी कहती हैं—बैठने की जरूरत नहीं है, चलकर ज़रा सो रहो।

नीलांबर ने धीरे-से पूछा—तेरी भाभी क्या कर रही है पूँटी?

हरिमती ने कहा—अभी-अभी खाने बैठी हैं।

नीलांबर ने पुचकारते हुए कहा—मेरी अच्छी बहन, एक काम करेगी?

हरिमती ने सिर हिलाकर कहा—करूँगी।

नीलांबर ने और भी कोमल आवाज़ से कहा—जा चुपके से मेरी चादर और छाता तो ले आ।

चादर और छाता?

नीलांबर ने कहा—हाँ।

हरिमती ऊपर आँखें चढ़ाकर बोली—ना बाबा! भाभी ठीक इसी तरफ मुँह किये खाने बैठी हैं।

नीलांबर ने आखिरी कोशिश करते हुए कहा—तो नहीं ला सकेगी?

हरिमती ने होंठ फैलाकर दो-तीन बार सिर हिलाकर कहा—ना दादा! देख लेंगीं। तुम चलकर लेटो।

उस समय दिन के दो बजे थे। बाहर तेज़ धूप की ओर देखकर छाते के बिना बाहर निकलने की बात वह सोच भी नहीं सका। इसलिए हताश होकर, बहन का हाथ पकड़े कोठरी में आकर लेट रहा। हरिमती कुछ देर तक अनर्गल बकती-बकती आखिर सो गई। नीलांबर चुपचाप रहकर अपने मन में तरह-तरह से आवृत्ति करके देखने लगा कि बात को ठीक किस तरह कह सकने से विराज का मन पसीज सकता है।

अब दिन प्राय: ढल चुका था। विराज अपने घर के ठंडे और चिकने सीमेंट के फर्श पर पट पड़ी हुई, छाती के नीचे एक तकिया दबाये, तन्मय होकर अपने मामा-मामी को चार पन्नों का एक लम्बा पत्र लिख रही थी कि अब की कैसे शीतला माई की कृपा से गाँव में केवल उसी का घर मृत्यु से बचा है और किस तरह उसकी माँग का सेंदुर और हाथ की चूड़ियाँ बच गई हैं। लिखते-लिखते, बराबर लिखते हुए भी, यह कहानी समाप्त

न होती थी। इसी समय नीलांबर ने पलंग पर से ही एकाएक उसे पुकारकर कहा—मेरी एक बात मानोगी विराज ?

विराज ने दावात में कलम रखकर सिर उठाकर पूछा—कहो, क्या बात है ?

मानो तो कहूँ।

विराज ने कहा—मानने की होगी तो ज़रूर मानूंगी। क्या बात है ?

नीलांबर ने दमभर सोचकर कहा—कहने से कोई फ़ायदा नहीं विराज, तुम मेरी बात न मान सकोगी।

विराज ने फिर प्रश्न नहीं किया। कलम उठाकर पत्र को समाप्त करने के लिए एक बार फिर झुक गई। पर लिखने में मन नहीं लगा सकी। जानने का कौतूहल भीतर ही भीतर प्रबल हो उठा। वह उठकर बैठ गई।—अच्छा कहो, मैं बात मानूंगी।

नीलांबर मुस्करा दिया। फिर कुछ हिचकते हुए बोला—आज दोपहर को मोती आया और रोते-रोते मेरे पैर पकड़कर बैठ गया। उसे विश्वास है कि उसके घर में मेरे पैर की धूल पड़े बिना उसका छोमन्त नहीं बचेगा। मुझे एक बार जाना होगा।

विराज मुँह ताकती हुई सुन्न-सी बैठी रही। थोड़ी देर में बोली—इस रोगी शरीर को लेकर जाओगे ?

क्या करूँ विराज, ज़बान दे चुका हूँ—एक बार मुझे जाना ही पड़ेगा।

ज़बान क्यों दी ?

नीलांबर चुप बैठा रहा।

विराज ने रूखेपन से कहा—तुम क्या समझते हो कि तुम्हारा जीवन केवल तुम्हारा ही है, उसमें और किसी को कुछ बोलने का हक नहीं है; तुम्हारा जो जी चाहे वही कर सकते हो ?

नीलांबर ने बात को हल्की बनाने की गरज से हँसने की चेष्टा की, लेकिन पत्नी का रुख और मुख देखकर वह हँस न सका। किसी तरह कह डाला—मगर उसका रोना देखकर—

विराज बीच ही में बोल उठी—ठीक तो है ! उसका रोना तुमने देखा लेकिन मेरा रोना देखने वाला भी कोई इस दुनिया में है ? यों कह-

कर उसने उस चार सफे की चिट्ठी को टुकड़े-टुकड़े करके फेंकते हुए कहा—ओह, ये मर्द भी कैसे होते हैं ! चार दिन और चार रातें खाना-पीना-सोना छोड़कर बिता दीं—उसका ही यह बदला हाथों-हाथ दे रहे हैं ? घर-घर बुखार और शीतला है, फिर भी इस रोगी निर्बल देह को लेकर रोगी को देखने-छूने जाते हैं।—अच्छा जाओ, मेरे भी भगवान् हैं। यों कहकर फिर एक बार छाती के नीचे तकिया दबाकर वह पट पड़ रही।

नीलांबर के होठों पर बहुत हल्की, दबी-सी मुसकिराहट आ गई। उसने धीरे से कहा—तुम औरतों को क्या वैसा भरोसा है, जो बात-बात में भगवान् की दोहाई देती हो ?

बिराज तेजी से उठ बैठी और क्रोध के लहजे में बोली—नहीं, भगवान् पर केवल तुम्हें ही भरोसा है, हम लोगों को नहीं। हम कीर्तन नहीं करतीं, तुलसी की माला नहीं पहनतीं, मुर्दे फूंकने नहीं जातीं, इसी से हम लोगों को नहीं, अकेला तुम लोगों को है।

बिराज का क्रोध देखकर नीलांबर को हँसी आ गई। उसने कहा—क्रोध न करो, बिराज, सचमुच ही ऐसा है। केवल एक तुम ही नहीं, सभी ऐसी हैं। भगवान् पर भरोसा रखने के लिए जितना ज़ोर चाहिए, उतना ज़ोर औरतों की देह में नहीं होता—इसमें तुम्हारा क्या दोष है ?

बिराज और भी झल्लाकर बोली—नहीं। यह दोष क्यों, औरतों का गुण है ! लेकिन अगर शरीर के बल की ही इतनी ज़रूरत है, तो शेर के, रीछ के शरीर में तो और भी अधिक है। खैर, वह बल हो या न हो, तुम चाहे जितनी बहस करो, मैं तुमको यह रोगी शरीर लेकर निकलने नहीं दूंगी।

नीलांबर चुप होकर लेट गया, फिर कुछ नहीं बोला। बिराज भी कुछ देर तक चुप पड़ी रही; फिर 'शाम हो गई, चलूँ' कहकर उठ गई। लगभग घंटे भर बाद संझा-बाती करने कोठरी में आई तो देखा, पति पलंग पर नहीं है। जल्दी से निकलकर पूंटी को पुकारा। पूछा—पूँटी, तेरे दादा कहाँ गये ? जाकर बाहर तो देख आ।

पूँटी दौड़ती हुई गई। चार-पांच मिनट में हाँफती हुई लौटी। बोली—कहीं नहीं हैं। नदिया के किनारे भी नहीं।

विराज गर्दन हिलाकर बोली—हूँ! इसके बाद रसोईघर के दरवाज़े पर आकर गुमशुम होकर बैठ रही।

३

तीन साल बाद की बात है। हरिमती को ससुराल गये दो महीने हो गये। छोटा भाई पीताम्बर रहता एक ही घर में है, पर उसका चूल्हा-चौका अलग हो गया है। शाम का झुटपुटा हैं। बाहर चण्डीमण्डप के बरामदे में एक टूटी चटाई के ऊपर नीलांबर चुपका बैठा था। विराज चुपचाप पास आकर खड़ी हो गई। नीलांबर ने उधर देखकर कहा—एँ, तुम एकाएक यहाँ?

विराज ने एक किनारे बैठकर कहा—एक बात पूछने आई हूँ।

क्या, पूछो?

विराज ने कहा—क्या खाने से मरण हो जाता है, बता सकते हो?

नीलांबर कुछ न बोला।

विराज ने फिर कहा—या तो बता दो, नहीं तो स्पष्ट कहो कि दिन-दिन तुम इस तरह सूखते क्यों जा रहे हो?

किसने कहा कि सूखता जा रहा हूँ?

विराज ने क्षणभर पति के मुख पर आँखें टिकाकर कहा—क्या जब कोई बतावेगा तब ही मैं जानूंगी! अच्छा, यह क्या सचमुच अपने मन की बात कह रहे हो?

नीलांबर ज़रा हँसा। बात को सँभालता हुआ बोला—ना रे, यह बात नहीं है। लेकिन तुमसे बड़ी भूल होती है न, इसी से पूछता हूँ कि यह किसी और ने तुम से कह दिया है या तुम आप ही ऐसा समझ बैठी हो?

विराज ने इस सवाल की जवाब देने की कोई ज़रूरत नहीं समझी। कहा—तुम से कितना कहा कि मेरी पूंटी का व्याह ऐसी जगह न करो, लेकिन तुम ने एक न सुनी। जो कुछ नगदी पास थी, वह चली गई, मेरे तन के सब गहने भी चले गये। अंदू चंडाल के लिए ज़मीन गिरों रख दी, दो बाग बेच डाले। उस पर यह दो साल से अकाल पड़ रहा है। अब तुम्हीं

बताओ, दामाद की पढ़ाई का खर्च महीने-महीने कैसे दे सकोगे ? ज़रा ढील हो गई, तो पूँटी को जली-कटी बातें सुननी पड़ेंगी। वह अभिमानिनी लड़की है, तुम्हारी निन्दा किसी तरह न सुन सकेगी। भगवान् जाने, अन्त में क्या का क्या हो जाय ! —तुमने ऐसा काम क्यों किया ?

नीलांबर मौन बना रहा।

बिराज कहती गई—इसके सिवा, अब दिन-रात पूँटी का भला करने के विचार से, उसकी चिन्ता में घुल-घुलकर, तुम मेरा भी सर्वनाश कर रहे हो, यह मैं न होने दूँगी। इससे तो तुम एक काम करो, दो-चार बीघे जमीन बेचकर चार-पाँच सौ रुपये इकट्ठा करो और गले में कपड़ा डालकर दामाद के बाप से कहो कि ये रुपये लेकर मुझे छुटकारा दे दीजिए ! हम लोग गरीब हैं, इससे अधिक नहीं दे सकते। इससे पूँटी के भाग्य में अच्छा या बुरा जो कुछ भी बदा हो सो हो।

फिर भी नीलांबर मौन ही रहा। उसके मुँह की ओर देखते रहकर बिराज ने कहा — नहीं कह सकोगे ?

नीलांबर ने एक लबी साँस छोड़कर कहा—कह सकता हूँ। लेकिन अगर सभी कुछ बेच डालेंगे बिराज, तो फिर हमारा क्या होगा ?

बिराज ने कहा—होगा और क्या ? जायदाद गिरों रखने, और महाजन का सूद और सिर हिलाना सहन करने से तो यह कहीं अच्छा है। मेरे कोई लड़का-बाला तो है ही नहीं, जिसके लिए चिन्ता करें। ले-देकर हम ही दो प्राणी हैं। किसी तरह गुज़र हो जायगा। और अगर बिलकुल नहीं ही हुआ तो तुम वोष्टम ठाकुर तो हो ही।

इसके पाँच-छः दिन बाद, रात के दस बजे के समय, नीलांबर बिछौने पर लेटा आँखें मूँदे गुड़गुड़ी की नली मुँह से लगाये तमाखू पी रहा था। घर का काम-काज निपटा कर बिराज शयन करने के पहले, फर्श पर बैठी अपने लिए खूब बड़ा-सा एक पान लगा रही थी कि एकाएक कह उठी—अच्छा जी, शास्त्र की क्या सभी बातें सच हैं ?

हुक्के की नली एक ओर रखकर नीलांबर ने पत्नी की ओर घूमकर कहा—अरे शास्त्र की बातें सच नहीं तो क्या झूठ हैं ?

बिराज ने कहा—नहीं, मैं उन्हें झूठ नहीं कहती। किन्तु क्या पहले की

77896

तरह आज-कल भी वे फलती हैं ?

नीलांबर ने क्षणभर सोचकर कहा—मैं पंडित तो हूँ नहीं बिराज। सब बातें भी जानता नहीं। लेकिन मेरी समझ में यही आता है कि सत्य सदा सत्य होता है। सत्य पहले भी सत्य था, और अब भी सत्य है; सदा सत्य रहेगा।

विराज ने कहा— अच्छा, सावित्री और सत्यवान् की ही कथा ले लो। सावित्री मरे हुए स्वामी के प्राण यमराज के हाथ से लौटा लाई। यह क्या सत्य हो सकता है ?

नीलांबर ने कहा—क्यों नहीं हो सकता ? जो सावित्री के समान सती हैं, वह ज़रूर मरे हुए पति को लौटा ला सकती हैं।

विराज ने बिना किसी हिचक के कह दिया—तब तो मैं भी लौटा ला सकती हूँ।

नीलांबर उसकी इस बात पर हँस पड़ा। बोला—तुम भी क्या उनके समान सती हो ? वे तो ठहरे देवता !

पान का डिब्बा सरकाकर एक ओर रखते हुए बिराज ने कहा—हाँ देवता ! सतीत्व में मैं ही भला उनसे काहे में कम हूँ ? मेरी जैसी सती संसार में और भी हो सकती हैं—किन्तु मन से, और ज्ञान से, हम लोगों से बढ़कर सती और कोई है, यह बात मैं नहीं मानती। चाहे सावित्री हो, चाहे कोई और, मैं किसी से तिल भर भी कम नहीं।

नीलांबर ने उत्तर नहीं दिया, केवल पत्नी के मुँह की ओर चुपचाप देखता रहा। विराज सामने दीया रखकर पान लगाने बैठी थी, दीपक का पूरा प्रकाश उसके मुँह पर पड़ रहा था। उसी प्रकाश में नीलांबर को स्पष्ट देख पड़ा कि बिराज की आँखों में एक अद्‌भुत पवित्र ज्योति फूटी पड़ रही है।

नीलांबर ने डरते-डरते कह डाला—तो जान पड़ता है, तुम भी कर सकोगी।

बिराज उठी और पति के पैरों पर माथा रखकर बोली—तुम यही अशीर्वाद दो कि अगर होश सँभालने के बाद इन दोनों चरणों के सिवा मैंने और कुछ न जाना हो, और मैं अगर यथार्थ में सती हूँ तो बुरा समय

आने पर मैं भी उन्हीं (सावित्री) की तरह तुमको लौटा ला सकूँ और उसके बाद इन्हीं चरणों पर सिर रखकर मर सकूँ—यह माथे का सिंदूर और हाथों की चूड़ियाँ पहने हुए ही चिता पर सो जाऊँ।

नीलांबर व्यस्त होकर उठ बैठा और बोला—आज तुमको यह क्या हो गया है विराज ?

विराज की दोनों आँखें छलछला रही थीं। फिर भी उसके होठों पर बहुत ही मीठी और कोमल हँसी आ गई। उसने कहा—यह फिर कभी सुनना, आज नहीं। आज तो केवल आशीष दो कि मरते समय मुझे इन चरणों की धूल मिले, और मैं तुम्हारी गोद में सिर रखकर, तुम्हारा मुँह देखती हुई मर सकूँ। आगे वह कुछ बोल न सकी, उसका गला रुँध गया।

नीलांबर ने डरकर, उसे खींचकर, अपनी छाती से लगा लिया और कहा—आज क्या हुआ है तुम्हें ? क्या किसी ने कुछ कहा है ?

अपने पति की छाती पर मुँह रखकर विराज चुपचाप रोने लगी, कुछ उत्तर नहीं दिया।

नीलांबर ने फिर कहा—और कभी तो तुमने ऐसा नहीं किया, विराज, क्या हुआ है, कुछ तो कहो।

विराज ने चुपचाप अपने आँसू पोंछ लिये, सिर नहीं उठाया। मृदु स्वर में इतना ही कहा—फिर किसी दिन सुनना।

नीलांबर ने फिर ज़ोर नहीं दिया। उसी तरह बैठे-बैठे उसके बालों में धीरे-धीरे उँगली चलाते हुए चुपचाप उसे सान्त्वना देने लगा। बहिन के विवाह में वित्त-बाहर खर्च कर डालने के कारण वह कुछ उलझन में पड़ गया था और अब पहले की तरह गिरिस्ती का काम नहीं चल पाता था। उस पर दो साल से लगातार अकाल पड़ रहा था। कोठी में धान नहीं, पोखर में पानी नहीं, मछली नहीं। केले का बाग सूखता जा रहा था। बाग़ के कच्चे नींबू सूखकर झड़े जा रहे थे। ऊपर से लेनदारों ने तगादे के लिए आना-जाना शुरू कर दिया था। उधर पूंटी के ससुर भी लड़के की पढ़ाई के ख़र्च के लिए कुछ मीठी कुछ कड़वी चिट्ठियाँ भेज रहे थे। विराज यह सब जानती न थी। कितने ही न रुचने वाले अप्रिय समाचार बड़ी कोशिश से नीलांबर ने छिपा रक्खे थे। इस समय वह उद्विग्न

होकर सोचने लगा—जान पड़ता है, किसी ने वे सब बातें विराज से कह दी हैं।

विराज एकाएक मुँह ऊपर उठाकर मुसकराई और बोली—अच्छा, एक बात पूछूँ, सच-सच बताओगे ?

नीलांबर ने मन-ही-मन अधिक शंकित होकर कहा—कौन-सी बात ?

विराज की सबसे बड़ी सुन्दरता उसके मुख की मनोहर हँसी थी। एक बार फिर वही हँसी हँसकर नीलांबर के मुख की ओर देखती हुई बोली—अच्छा, मैं काली कुत्सित तो नहीं हूँ ?

नीलांबर ने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

विराज ने पूछा—अगर मैं काली कुत्सित होती, तो क्या तुम इतना चाहते—इतना प्यार करते ?

यह अद्‌भुत प्रश्न सुनकर यद्यपि वह कुछ विस्मित हुआ तथापि उसकी छाती पर से जैसे एक भारी बोझ सहसा उतर गया।

उसने प्रसन्न होकर हँसते हुए कहा—मैं तो बचपन से एक परम सुन्दरी को ही प्यार करता आया हूँ। अब इस समय कैसे बताऊँ कि वह अगर काली-कुत्सित होती तो क्या करता ?

विराज ने दोनों हाथ पति के गले में डाल दिये और भी पास मुँह ले जाकर कहा—मैं बता दूँ कि तुम क्या करते ? तब भी तुम मुझे ऐसे ही प्यार करते।

फिर भी नीलांबर उसके मुख को चुपचाप देखता रहा।

बिराज ने कहा—तुम क्या सोच रहे हो कि यह मैंने कैसे जान लिया, क्यों न ?

अबकी नीलांबर धीरे-धीरे बोला—यही सोच रहा हूँ कि तुमने कैसे जान लिया!

बिराज पति का गला छोड़कर, उसकी छाती पर एक तरफ सिर रखकर लेट गई और ऊपर की ओर ताकती हुई धीरे-से बोली—मेरा मन मुझे बता देता है। मैं तुमको जितना चीन्हती हूँ, उतना तुम खुद भी अपने को नहीं चीन्हते। इसी से जानती हूँ कि तुम तब भी मुझे ऐसे ही प्यार करते। जो अन्याय है, जिससे पाप होता है, वह तुम कभी नहीं कर सकते। अपनी

स्त्री को प्यार न करना अन्याय है—पाप है। इसी से मैं जानती हूँ कि अगर मैं कानी-कुबड़ी भी होती, तो भी तुमसे इतना ही प्यार-दुलार पाती।

नीलांबर ने कोई जवाब नहीं दिया।

दमभर स्थिर रहकर बिराज ने एकाएक हाथ बढ़ाकर अनुमान से स्वामी की आँखों के कोनों को देखा और फिर कहा—यह आँखों में आँसू क्यों?

नीलांबर ने प्रेम से उसका हाथ हटाकर भारी गले से कहा—कैसे जाना?

बिराज ने कहा— तुम क्यों भूल जाते हो कि नौ वर्ष की अवस्था में मेरा ब्याह हुआ था? यह क्यों भूल जाते हो कि तुमको पाने के बाद मैंने तुमको पाया है? अपनी देह में हाथ देकर भी क्या नहीं जान पाते कि मैं भी उसमें मिल गई हूँ?

नीलांबर ने बात नहीं की। उसकी बंद आँखों के कोनों से बूंद-बूंद करके आँसू टपकने लगे।

बिराज ने उठकर बड़े प्रेम के साथ अपने आँचल से सावधानी के साथ पति के आँसू पोंछते हुए गाढ़े स्वर में कहा—तुम चिन्ता न करो। सासजी मरते समय पूँटी को तुम्हारे हाथ में सौंप गई थीं। पूँटी के भले की आशा करके तुमने जो ठीक और अच्छा समझा, वही किया है। माँ स्वर्ग से हमको आशीष देंगी। तुम अच्छे और स्वस्थ हो जाओ, कर्ज के बोझ से छुटकारा पा जाओ, इसमें हमारा सरबस चला जाय तो चला जाय।

नीलांबर आँखों को पोंछता हुआ रुँधे गले से बोला—तुम नहीं जानतीं बिराज कि मैंने क्या किया है—मैंने तुम्हारा···।

बिराज ने आगे कहने नहीं दिया। पति का मुँह हाथ से बंद करके बोल उठी—मैं सब जानती हूँ। और कुछ जानूं या न जानूं, यह निश्चय जानती हूँ कि तुमको बीमार नहीं पड़ने दूंगी। ना, यह न होगा। जिसका जो पावना हो, वह दे दो, देकर निश्चिन्त हो जाओ। फिर इसके बाद सिर के ऊपर भगवान हैं और चरणों के नीचे मैं हूँ।

नीलांबर लम्बी साँस लेकर चुप हो गया।

४

छः महीने और भी गुज़र गये। पूँटी का व्याह होने के पहले ही छोटा भाई ज़मीन-जायदाद का बटवारा कराकर अलग हो गया था। नीलांबर के हिस्से में जो आया था, उसका कुछ हिस्सा उसी समय गिरों रखकर कर्ज लेना पड़ा था। कहने की ज़रूरत नहीं कि पीतांबर ने एक पैसे की भी सहायता नहीं की। बाकी जो कुछ ज़मीन और पूंजी बची, उसे नीलांबर एक के बाद एक गिरों रखकर बहनोई की पढ़ाई का खर्च जुटाने लगा और गिरिस्ती चलाने लगा। इस प्रकार वह दिन-दिन अपने को ऋण के नाग-पाश में जकड़ता गया। लेकिन ममता के मारे वह अपनी बाप-दादों की जायदाद को किसी तरह एकदम नहीं बेच सका।

आज तीसरे पहर उस मोहल्ले के भोलानाथ मुखर्जी बाकी ब्याज के लिए कुछ कड़ी बातें कह गये। आड़ में खड़ी बिराज ने वह सब सुना। नीलांबर जैसे ही भीतर आया, वह चौके से निकलकर चुपचाप उसके सामने आकर खड़ी हो गई। उसके चेहरे को देखते ही नीलांबर घबरा उठा। अपमान और क्षोभ से बिराज के हृदय में आग-सी जल रही थी। लेकिन इस भाव को दबाकर पलंग की ओर उँगली से इशारा करके, प्रशान्त गंभीर स्वर में उसने कहा—यहाँ बैठो।

नीलांबर पलंग पर बैठ गया। बिराज भी उसके पैरों के पास नीचे बैठ गई। बोली—देखो, आज या तो कर्ज चुकाकर मुझे उरिन करो, नहीं तो मैं आज तुम्हारे पैर छूकर कसम खा लूँगी—

नीलांबर समझ गया कि बिराज ने सब बातें सुन ली हैं। इसी से बहुत डरते हुए, फौरन झुककर उसके मुँह अपना हाथ रखकर बंद कर दिया और खींचकर उसे अपने पास बिठाते हुए स्निग्ध कण्ठ से कहा—छिः बिराज, साधारण बातों में ही इस तरह आपे से बाहर न हो जाया करो।

अपने मुँह पर से पति का हाथ हटाकर बिराज ने कहा—अगर इससे भी आदमी आपे से बाहर नहीं होता है तो फिर काहे से होता है, बताओ?

नीलांबर को एकाएक इसका कुछ जवाब नहीं सूझा। वह चुप बैठा रहा।

बिराज ने कहा—चुप क्यों रह गये ? जवाब दो।

नीलांबर ने धीरे से कहा—जवाब देने को कुछ भी नहीं है बिराज। लेकिन—

बिराज बीच-ही-में रोककर वह उठी—ना, लेकिन-वेकिन से काम नहीं चलेगा। यह भरोसा कभी न रखना कि मेरे ही घर में खड़े होकर लोग तुम्हारा अपमान कर जायँगे और मैं अपने कानों से सुनकर सह लूंगी। या तो आज इसका कोई उपाय करो, नहीं तो मैं अपनी जान दे दूँगी।

नीलांबर ने डरते-डरते कहा—एक ही दिन में इसका क्या उपाय करूँगा बिराज ?

बिराज ने कहा—भला दो दिन बाद ही क्या उपाय करोगे, ज़रा मुझे समझाओ ?

नीलांबर चुप हो रहा।

बिराज ने कहा—एक पूरी न हो सकने वाली आशा करके अपने को बहलाने की कोशिश न करो, इस तरह मेरा सर्वनाश न करो। जितने दिन बीतेंगे, उतना ही तुम इस कर्ज के फंदे में अपने को जकड़ते जाओगे। मैं तुम्हारी दोहाई देती हूँ, तुम से भीख माँगती हूँ, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अभी, इसी घड़ी, इसका कोई उपाय करो, छुटकारे की कोई राह निकालो।

यह कहते-कहते आँसुओं से उसका गला भर आया। भोला मुखर्जी की बातें उसकी छाती में शूल-सी चुभने लगीं।

अपने हाथ से उसके आँसू पोंछते हुए नीलांबर ने धीरे से कहा—इस तरह धीरज छोड़ने से क्या होगा बिराज ? अगर एक साल भी पूरी फसल हो गई तो मैं अपनी औनी-पौनी जायदाद छुड़ा ले सकूँगा। लेकिन बेच डालने से तो ऐसा न हो सकेगा—यह तो सोचो।

बिराज ने गीले गले से कहा—सोच लिया है। एक तो अगले साल फसल ठीक-ठीक होने का ही क्या भरोसा है ? उस पर ब्याज का चक्कर है और लेनदारों का कड़ा तगादा है। मैं सब सह सकती हूँ, लेकिन तुम्हारा अपमान नहीं सह सकती !

नीलांबर आप भी इसे अच्छी तरह जानता था, इसी से कुछ जवाब नहीं दे सका।

विराज ने फिर कहा—मुझको क्या एक यही दुःख है ? दिन-रात सोच करते-करते तुम मेरी आँखों के सामने ही सूखते जा रहे हो। यह सोने की देह काली पड़ती जा रही है ! —अच्छा, मेरी देह पर हाथ रखकर तुम्हीं कहो, क्या इतना सहने की शक्ति मुझ में है ? जोगीन की पढ़ाई का खर्च और कब तक देना पड़ेगा ?

नीलांबर ने कहा—बस एक साल और। इसके बाद वह डॉक्टर हो जायगा।

दम-भर चुप रहकर विराज ने कहा—हमने पूँटी को पाल-पोस कर आदमी बनाया है, वह राजरानी बने। लेकिन अगर पहले मालूम होता कि उसके कारण इतना दुःख झेलना पड़ेगा तो उसे बचपन ही में नदी में बहा देती, यों अपने सिर पर गाज न गिराती। हे भगवान् ! वे लोग बड़े आदमी हैं, उन्हें कोई कष्ट नहीं है, कोई कमी नहीं है। तब भी जोंक की तरह हमारे कलेजे का खून चूसते उन्हें तनिक भी दया नहीं आती—तरस नहीं आता !

इतना कहकर, एक गहरी लंबी साँस छोड़कर वह सुन्न-सी हो रही। बोली—चारों ओर अभाव है, चारों ओर अकाल की काली छाया है ! अभी से कितने ही दुःखी दीन गरीबों को फाके होने लगे हैं, कितने ही लोग एक जून खाने लगे हैं। ऐसे बुरे समय में हम लोग पराये लड़के को क्यों पढ़ा-लिखाकर आदमी बनावेंगे ? पूँटी के ससुर के कोई कमी नहीं है, वह बड़े आदमी हैं। वह अगर अपने लड़के को नहीं पढ़ा सकते तो हम क्यों पढ़ावें ? जो हुआ सो हुआ, अब तुम इसके लिए कर्ज न ले सकोगे।

बड़े कष्ट से होठों पर सूखी हँसी लाकर नीलांबर ने कहा—सब सम-समझता हूँ विराज ! मगर मैंने शालग्राम जी के सामने कसम खाकर जो प्रतिज्ञा की है, उसका क्या होगा ?

विराज तुरन्त कह उठी—कुछ भी न होगा। शालग्राम अगर सच्चे देवता हैं तो वह हमारा कष्ट जरूर समझेंगे। फिर मैं भी तो तुम्हारा आधा अंग हूँ। ऐसा करने से अगर कुछ पाप दोष होगा तो उसे अपने सिर आँखों पर लेकर जन्म-जन्मान्तर तक नरक भोग लूँगी, तुम्हें कोई डर नहीं है। अब तुम कर्ज न लो।

धर्मात्मा स्वामी के हृदय में जो घोर दुःख था, वह बिराज से तनिक भी छिपा नहीं था। लेकिन अब वह अधिक न सह सकती थी। वास्तव में पति ही उसका सर्वस्व था। उसी पति के दिन-रात की चिन्ता से सूखे हुए उदास मुख की ओर देखकर उसका हृदय विदीर्ण होता था। वह अभी तक किसी तरह रुलाई रोककर बात कर रही थी, लेकिन अब न कर सकी। तेजी से पति की छाती में मुँह छिपाकर फूट-फूटकर रोने लगी।

दाहिना हाथ बिराज के सिर पर रखकर नीलांबर चुपचाप पत्थर की मूर्ति-सा निश्चल होकर बैठा रहा। देर तक रोने के बाद बिराज के दुस्सह दुःख की तीव्रता घटने लगी। तब वह वैसे ही पति की छाती में मुँह छिपाये रोते-रोते बोली—बचपन से लेकर जब तक की मुझे याद है, कभी तुम्हारा मुँह उतरा या सूखा नहीं दिखाई पड़ा, कभी तुमको मुँह फुलाये नहीं देखा। पर अब तुम्हारे मुँह की तरफ़ देखते ही मेरे कलेजे में रावण की चिता जलने लगती है। तुम अपना खयाल न करो, तो ज़रा मेरी ही तरफ एक बार निहार देखो। अन्त में क्या तुम सचमुच मुझको राह की भिखारिन बना दोगे? और यह क्या तुम सहन कर सकोगे?

फिर भी नीलांबर कुछ जवाब न दे सका। अनमने की तरह धीरे-धीरे पत्नी के सिर पर हाथ फेरने लगा—उसके केशों में उँगलियाँ चलाने लगा। इसी समय द्वार के बाहर से ही उसकी पुरानी दासी सुन्दरी ने पुकारकर कहा—बहूरानी, चूल्हा जला दूँ क्या?

बिराज हड़बड़ाकर उठ बैठी। आँचल से मुँह और आँखें पोंछकर कोठरी के बाहर निकल आई।

सुन्दरी ने फिर पूछा—चूल्हा जला दूँ?

बिराज ने अस्पष्ट स्वर में कहा—जला दे, तुम लोगों के लिए खाना बनाना पड़ेगा, मैं तो अब कुछ न खाऊँगी।

दासी ने और ज़ोर की आवाज़ में, नीलांबर को सुनाकर कहा—वाह बहू, तो क्या तुमने रात का भोजन बिल्कुल बन्द कर दिया? न खाकर आधी तो रह गई हो!

बिराज हाथ पकड़कर उसे खींचती हुई चौके की तरफ़ ले गई।

चूल्हे की रोशनी बिराज के मुख पर पड़ रही थी। थोड़ी दूर पर

बैठी दासी आँखें फाड़े उसकी ओर निहार रही थी। एकाएक कह उठी—सच कहती हूँ बहूरानी, तुम्हारा जैसा रूप मैंने किसी मनुष्य में कहीं नहीं देखा। ऐसा रूप तो बड़े-बड़े राजों-महाराजों के यहाँ भी नहीं है।

उसकी ओर मुँह करके कुछ बिगड़कर विराज ने कहा—तू क्या राजों-महाराजों की भी खबर रखती है ?

सुन्दरी की अवस्था लगभग ३५-३६ वर्ष की थी। किसी जमाने में वह भी सुन्दरी कही जाती थी और उसकी वह शोहरत आज भी एकदम मिट नहीं गई है।

वह कहती—उसे कुछ भी याद नहीं कि कब उसका ब्याह हुआ और कब विधवा हो गई। लेकिन सोहागिन के सौभाग्य से वह बिल्कुल ही वंचित नहीं हुई, उसके गाँव कृष्णपुर में उसकी यह सुकीर्ति फैली हुई है। उसने हँसकर कहा—राजों-रजवाड़ों की कुछ-न-कुछ खबर तो रखती ही हूँ बहूरानी ! नहीं तो उस दिन झाड़ू से पूजा न कर देती।

अब की विराज सचमुच ही क्रोधित हो उठी। बोली—तू जब तब यही बातें क्यों किया करती है सुन्दरी ? उसने जो जी चाहा, कहा। इसके लिए तू क्यों झाड़ू मारती ? और मुझको ही तू क्यों बेकार सुनाती है ? वह क्रोधी आदमी हैं, सुन पावेंगे तो क्या कहेंगे, बोल !

सुन्दरी कुछ झेंपकर बोली—बाबूजी सुन ही क्यों पावेंगे बहूरानी ? यह भी कोई बात में बात है !

विराज ने कहा—बात में बात नहीं है, यह क्या मुझे तू समझावेगी ? इसके सिवा जो हो-हवाकर समाप्त हो गया, उसकी बात उठाने की ज़रूरत ही क्या है ?

सुन्दरी झट से कह उठी—कहाँ हो-हवा गया बहूरानी। कल भी तो मुझे बुला ले जाकर...

विराज ने क्रोधित होकर कहा—तू गई ही क्यों ? नौकरी मेरे यहाँ करेगी और जो कोई बुलावेगा उसके पास दौड़ी जायगी ! तूने ही तो कहा था कि उस दिन वे लोग कलकत्ते चले गये ?

सुन्दरी ने कहा—सच ही तो कहा था बहूरानी। दो महीने हुए, वे चले गये थे, लेकिन अब देखती हूँ, सब आ गये हैं। और मेरे जाने की बात जो

कहती हो बहूरानी, सो सिपाही बुलाने आता है, तब 'नहीं' कैसे कर दूं ? इस गाँव के वह जमींदार हैं और हम लोग हैं दुखी परजा। किस बल पर उनका हुकुम न मानूं ?

विराज क्षणभर सुन्दरी की ओर ताकती रही, फिर बोली—वे क्या इस गाँव के ज़मींदार हैं ?

सुन्दरी ने हँसकर कहा—हाँ बहूरानी। यह महाल उन्होंने ही खरीदा है और वही तंबू लगाकर ठहरे हैं। सच कहती हूँ बहूरानी, सचमुच राजकुमार हैं। आह, कैसा सुन्दर नाक-नक्शा है ! आँखें चेहरा...।

विराज एकाएक रोककर बोली—ठहर ठहर, चुप रह। यह सब तो मैंने तुझसे नहीं पूछा। यह बता कि तुझसे क्या कहा ?

अब की सुन्दरी मन में खीझ उठी, लेकिन इस भाव को छिपाकर क्षोभ के स्वर में बोली—बात और क्या होगी बहू, वही तुम्हारी ही बात !

'हूँ' कहकर विराज चुप हो रही।

यहाँ पर बात ज़रा समझा देनी होगी। दो साल पहले यह महाल कलकत्ते के एक ज़मींदार के हाथ आया। ज़मींदार का छोटा बेटा, राजेन्द्र कुमार बड़ा बदचलन और उद्दण्ड है। उसके बाप उसे जमींदारी के काम-काज में शिक्षित और संयत करने के लिए, खासकर कलकत्ते के बाहर रखने की मंशा से, पास के ही किसी इलाके में भेजना चाहते थे। परसाल वह यहाँ आया लेकिन कचहरी का मकान न होने से सप्तग्राम के उस पार, ग्रांडट्रंक रोड के किनारे एक आम के बाग़ में तम्बू गाड़कर रहता था। लेकिन जिस दिन वह यहाँ आया, उस दिन से किसी काम-काज के पास भी नहीं फटका। उसे पक्षियों का शिकार करना रुचता था। ह्विस्की की बोतल पीठ पर बाँधे, बंदूक कंधे पर रक्खे, चार-पाँच शिकारी कुत्ते साथ लिये वह सारे दिन नदी के किनारे-किनारे जंगल में चिड़ियों का शिकार करता फिरता था। छः महीने हुए, एक दिन संध्या के समय, गोधूलि-बेला की सुनहली आभा से अनुरंजित, भीगी धोती पहने, विराज के ऊपर उसकी नज़र पड़ गई। विराज के घर के पास का यह घाट चारों ओर से बड़े-बड़े और घने वृक्षों से ढका होने के कारण किसी तरफ से दिखाई नहीं देता था। बेखटके नहा-धोकर, पानी से भरा घड़ा उठाकर विराज ने जैसे ही आँखें ऊपर को

उठाईं कि इस अजनबी आदमी से उसकी चार आँखें हो गईं। राजेन्द्र पक्षियों की खोज करते इस तरफ आया था। पास के ही समाधि-स्तूप पर खड़े होकर उसने बिराज को देखा। उसे जैसे एकाएक यह विश्वास नहीं हुआ कि मनुष्य के भी इतना रूप होता है! वह इस ओर से आँखें न फेर सका। चित्रलिखित-सा टकटकी लगाकर, इस अतुल, असीम रूप-राशि को मगन होकर निहारने लगा। बिराज किसी तरह भीगी धोती से लज्जा निवारण करके तेजी के साथ चल दी। राजेन्द्र सकते में आकर कुछ देर और भी खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे लौट गया। वह यही सोचते-सोचते गया कि यह कैसे संभव हुआ! इस जंगल के बीच, इस छोटे-से गाँव में, जहाँ कोई भला आदमी नहीं रहता, इतना अद्‌भुत रूप कैसे और कहाँ से आ गया! इस अदृष्टपूर्व सौन्दर्यमयी का परिचय भी उसी रात को उसने पता लगाकर प्राप्त कर लिया और उसी घड़ी से उसके दिमाग़ में एक यही चिन्ता बस गई, दूसरा कोई खयाल ही नहीं रहा। इसके बाद और भी दो दफ़े बिराज से उसका सामना हुआ।

उस दिन बिराज ने घर पहुँचकर सुन्दरी को बुलाकर कहा—घाट पर तो जा सुन्दरी, वहाँ पीर साहब के मजार पर कोई आदमी खड़ा है, उसे मना कर दे कि फिर कभी हमारी बगिया में पैर न रक्खे।

सुन्दरी मना करने गई, लेकिन पास पहुँचते ही हतबुद्धि हो गई। बोली—बाबूजी, आप!

राजेन्द्र ने सुन्दरी के मुँह की ओर देखकर पूछा—तुम मुझे पहचानती नहीं?

सुन्दरी ने कहा—बाबूजी, आपको भला कौन नहीं पहचानता?

जानती हो, मैं कहाँ रहता हूँ?

सुन्दरी ने कहा—जानती हूँ।

राजेन्द्र बोला—क्या आज एक बार वहाँ आ सकती हो?

सुन्दरी ने सलज्ज हँसी से सिर झुकाकर धीरे-से पूछा—किसलिए बाबूजी?

कुछ काम है, ज़रा आना। यों कहकर बंदूक कंधे पर रखकर, वह चला गया।

इसके वाद कितनी ही दफ़े सुन्दरी छिपकर, सन्नाटे में, उस पार की ज़मींदार-कचहरी में गई है, कितनी ही वातें की हैं, मगर वहाँ से लौट आकर एक आध इशारे के सिवा वह कोई भी वात विराज के सामने उठाने की हिम्मत नहीं कर सकी। सुन्दरी कुछ वेवकूफ़ न थी। वह विराज को पहचानती थी और अच्छी तरह जानती थी कि यह वहू वाहर से चाहे जितनी मधुर और कोमल दिखाई देती हो, लेकिन इसकी भीतर की प्रकृति वड़ी उग्र और पत्थर के समान है। विराज की देह में एक चीज और थी—वह था उसका कठिन अपरिमेय साहस। चाहे आदमी हो, चाहे साँप-बिच्छू और चाहे भूत-प्रेत, भय किसे कहते हैं वह जानती ही न थी। एक कारण यह भी था, जिससे सुन्दरी उसके सामने मुँह न खोल सकी थी।

चूल्हे के भीतर लकड़ी सरकाकर, सुन्दरी की ओर मुँह करके विराज ने कहा—अच्छा सुन्दरी, तू तो कितनी ही वार वहाँ गई आई है, कितनी ही बातें भी की हैं, लेकिन मुझे तो तूने एक भी वात नहीं वताई!

सुन्दरी पहले तो हतवुद्धि हो गई लेकिन फौरन ही सँभलकर वोली—तुमसे किसने कहा वहूरानी कि मैं वहुत-सी वातें कर आई हूँ?

विराज ने कहा—किसी ने नहीं—मैं आप ही जानती हूँ। मेरे सिर में पीछे की ओर और भी दो आँखें, दो कान हैं न! वता, कल इनाम में तू कितने रुपए लाई है? दस रुपए?

सुन्दरी के मुँह से वोल नहीं निकला। उसके चेहरे पर एक पीली छाया-सी छा गई। चूल्हे की धुँधली रोशनी में भी विराज ने उसे देख लिया और यह भी समझ गई कि सुन्दरी को कोई जवाव नहीं सूझ रहा है।

बिराज ने कुछ मुसकिराकर कहा—सुन्दरी, तेरा इतना वड़ा कलेजा नहीं हो सकता कि तू मेरे सामने मुँह खोलकर कुछ कह सके। तू क्यों वेकार आ-जाकर, रुपए लेकर, अन्त में वड़े आदमी के क्रोध की शिकार बनना चाहती है? जा, कल से इस घर में पैर न रखना। तेरे हाथ का पानी पैरों पर डालने में भी मुझे घिन मालूम होती है। इतने दिन तेरी सब बातें नहीं जानती थी, पर दो दिन पहले वह भी सुन ली हैं। जा, तेरे आँचल में जो दस रुपए का नोट वँधा है, वह जाकर फेर आ। तू ग़रीब है, कहीं काम-धंधा करके पेट पाल ले। अपनी जवानी में जो कर चुकी है,

वह तो फिर नहीं सकता, लेकिन अब चार आदमियों का सर्वनाश न कर।

सुन्दरी कुछ कहना चाहती थी, परन्तु उसकी जीभ मुँह में ही लड़खड़ाकर रह गई।

यह भी विराज ने देख लिया। देखकर कहा—झूठ बोलने से अब क्या होगा? ये सब बातें मैं किसी से नहीं कहूँगी। पहले मैं नहीं समझी थी कि तेरे आँचल में बँधा यह नोट कहाँ से आया; पर अब सब समझ गई हूँ। जा, आज से तुझे जवाब दे दिया, कल से मेरे घर में न घुसना।

यह क्या! सुन्दरी घोर विस्मय से अवाक् होकर बैठी रही। इस घर से उसका दाना-पानी उठ गया, यह उसकी समझ में एक असंभव बात थी और उसके मन में किसी तरह नहीं बैठती थी। वह बहुत दिनों की दासी है। उसने विराज का ब्याह देखा है, पूँटी को पाल-पोसकर बड़ा किया है, घर-मालकिन के साथ तीर्थयात्रा कर आई है। वह भी इस परिवार की एक व्यक्ति है। आज उसी को विराज ने घर में न घुसने को कह दिया। क्षोभ और अभिमान से उसका गला भर आया। क्षण-भर में कितनी ही तरह के जवाब, कितनी ही बातें उसकी जबान पर दौड़ आईं, लेकिन मुँह से एक शब्द भी न निकाल सकी, विह्वल-सी होकर ताकती रह गई।

बिराज ने मन ही मन सब समझ लिया। लेकिन वह चुप ही रही। मुँह फिराकर देखा, पतीली का पानी जलकर कम हो गया है। पास ही एक पीतल की कलसी में पानी था। लोटा लेकर उसके पास गई। लेकिन न जाने क्या सोचकर क्षण-भर में स्थिर होकर लोटा रख दिया और कहा—ना, तेरे हाथ का पानी छूने से भी उनका अनिष्ट-अमंगल होगा। तूने इसी हाथ से रुपए लिये हैं।

सुन्दरी इस तिरस्कार का भी जवाब न दे सकी।

बिराज ने एक दूसरी लालटेन जलाई, फिर कलसी उठाकर रात के घनघोर अंधकार में, वह आम की बगिया के भीतर होकर अकेले ही नदी से पानी लाने के लिए चल दी।

बिराज के चले जाने पर एक बार सुन्दरी के मन में आया कि वह भी उसके पीछे-पीछे जाय; लेकिन वह अंधकारपूर्ण सँकरी जंगल की राह, चारों ओर की प्राचीर, सप्तग्राम के जाने-अजाने समाधि-स्तूप, वह पुराना

बरगद का वृक्ष, ये सब दृश्य उसकी आँखों के आगे फिर गये। भय से उसके रोंगटे खड़े हो गये, सिर के केश तक कांप उठे—अस्पष्ट आवाज़ में 'अरी मैयारी' कहकर वह स्तब्ध होकर बैठी रही।

५

दो दिन बाद नीलांबर ने पूछा—सुन्दरी नहीं दिखाई पड़ती बिराज ?

बिराज ने कहा—मैंने उसे जवाब दे दिया है।

नीलांबर ने परिहास समझकर कहा—अच्छा किया। लेकिन बताओ तो, उससे हुआ क्या है ?

बिराज ने कहा—होगा क्या, मैंने सचमुच ही उसे छुड़ा दिया है।

फिर भी नीलांबर इस बात पर विश्वास नहीं कर सका। बहुत ही अचम्भे में आकर, उसके मुँह की ओर ताकते हुए बोला—उसको कैसे छुड़ा दोगी ? वह कितना ही कसूर करे, यह भी तो खयाल करो, कितने दिनों की पुरानी दासी है ? उसने क्या किया था ?

बिराज ने कहा—मैंने अच्छा समझकर ही छुड़ा दिया है।

नीलांबर ने कुछ चिढ़कर कहा—यही तो पूछता हूँ कि कैसे अच्छा समझा ?

बिराज स्वामी के मनोभाव को समझ गई। चुपचाप दमभर उसका मुँह ताकती रही, फिर बोली—मैंने अच्छा समझा, छुड़ा दिया। अब तुम अच्छा समझो तो बुला लाओ। कहकर, उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह चौक में चली गई।

नीलांबर ने समझा कि बिराज चिढ़ गई है, इसलिए फिर कुछ नहीं कहा। कोई घंटे-भर बाद लौटकर, दरवाजे के बाहर खड़े होकर धीरे-से कहा—तुमने छुड़ा तो दिया, लेकिन काम कौन करेगा ?

अबकी बिराज मुँह फेरकर हँस दी। उसके बाद बोली—तुम !

नीलांबर ने भी हँसकर कहा—तो लाओ, जूठे बर्तन मांज-धो लाऊँ।

हाथ की कलछी झन से फेंक, हाथ धोकर, पास जाकर, पति के चरणों की रज मस्तक में लगाकर बिराज ने कहा—तुम यहाँ से जाओ। ज़रा-सी

हँसी करना भी दूभर है। सुनते ही ऐसी बात कह उठते हो, जिसे कान से सुनना भी घोर पाप है।

नीलांबर ने कुछ झेंपकर कहा—वाह, यह भी कान से सुनने से पाप होता है? समझ में नहीं आता विराज, कि तुम्हें काहे से पाप नहीं होता है।

विराज ने कहा—तुम सब समझते हो। न समझते तो इतने काम रहते जूठे बर्तनों की ही बात न उठाते।—जाओ, देर न करो, स्नान कर आओ, रसोई तैयार हो गई है।

नीलांबर दरवाज़े की चौखट पर बैठ गया और बोला—सचमुच कहो विराज, घर का काम-धंधा कौन करेगा?

बिराज आँख उठाकर बोली—काम है कहाँ? पूंटी नहीं है, छोटे लल्ला भी नहीं हैं। काम न रहने से मैं भी सारे दिन बैठी रहती हूँ। अच्छी बात है, जब काम न चलेगा, तब तुमसे कह दूँगी।

नीलांबर ने कहा—ना विराज, यह न होगा। नौकर-दासी का काम मैं तुमको नहीं करने दे सकता। सुन्दरी ने कोई कसूर नहीं किया, केवल खर्च बचाने के लिए तुमने उसे अलग कर दिया है। बोलो, सच है कि नहीं?

बिराज ने कहा—ना, सच नहीं है। उसने सचमुच अपराध किया है।

नीलांबर ने पूछा—क्या अपराध?

विराज ने कहा—यह मैं नहीं बताऊँगी।—जाओ, बैठे न रहो, स्नान कर आओ।

इतना कहकर बिराज भी दरवाज़े से बाहर हो गई। थोड़ी देर बाद लौट आकर, नीलांबर को उसी तरह बैठे देखकर बोली—क्यों, गये नहीं? अभी तक बैठे हो?

नीलांबर ने कोमल स्वर में कहा—जाता हूँ, लेकिन विराज, यह तो मुझसे बरदाश्त न हो सकेगा। मैं तुमको उंछवृत्ति कैसे करने दूँगा?

यह सुनकर बिराज कुछ प्रसन्न नहीं हुई। क्षण-भर पति की ओर देखकर बोली—क्या करोगे, जरा सुनूँ?

नीलांबर ने कहा—देखो, सुन्दरी को नहीं रखना चाहतीं तो और किसी को रख लो। तुम घर में अकेली कैसे रहोगी?

बिराज ने कहा—चाहे जैसे रहूँ, मगर अब किसी को नहीं रखूँगी।

नीलांबर ने फिर भी कहा—नहीं, यह न होगा। जब तक जिन्दा हूँ, तब तक मान-अपमान भी है। मोहल्ले के लोग सुनकर क्या कहेंगे ?

विराज कुछ फासले पर बैठ गई। बोली—मोहल्ले के लोग सुनकर क्या कहेंगे, असल में तुम्हें यही डर है। मैं कैसे रहूँगी, मुझे कष्ट होगा, यह सब सिर्फ़ एक छल है।

क्षोभ और आश्चर्य से आँखें उठाकर नीलांबर ने कहा—छल है ?

विराज ने कहा—हाँ, छल है। आजकल मैं सब जान गई हूँ। अगर मेरे मुँह की ओर देखते, मेरे दुःख पर ध्यान देते, मेरी एक भी बात सुनते, तो आज मेरी यह दशा नहीं होती।

नीलांबर ने कहा—मैंने तुम्हारी एक भी बात नहीं सुनी ?

विराज ने ज़ोर देकर कहा—ना, एक भी नहीं ! जब ही कुछ कहती हूँ, तभी कोई न कोई छल करके टाल देते हो। तुम केवल यही सोचते हो कि तुम्हें पाप होगा, तुम्हारी बात न रहेगी, दुनिया में तुम्हारी बदनामी होगी। मगर कभी एक बार भी सोचा है कि मेरा क्या होगा ?

नीलांबर ने कहा—मेरे पाप की भागिनी तुम न होगी ? मेरी बदनामी से तुम्हारी बदनामी न होगी ?

अब की विराज एकदम क्रोधित हो उठी। तीखी होकर बोली—देखो, ये सब बच्चों को फुसलाने की बातें हैं। अब मेरी उम्र ऐसी बातों से बहलने की नहीं है !

दमभर चुप रहकर फिर कह उठी—तुम केवल अपनी ही बात सोचते हो, और कुछ नहीं सोचते—बड़े दुःख से आज यह बात मुझे मुँह से निकालनी पड़ रही है। आज तो तुमको अपने घर में मुझको नौकरानी का काम करने देने में लाज आती है, लेकिन अगर कल तुमको कुछ हो जाय तो परसों ही मुझको दूसरों के घर जाकर दो मुट्ठी अन्न के लिए वही दासी का काम करना पड़ेगा। हाँ, यह ज़रूर है कि तब तुमको अपनी आँखों से देखना न पड़ेगा, कानों से सुनना भी नहीं पड़ेगा, इसलिए तुमको लज्जा भी न होगी। भावना-चिन्ता करने की भी ज़रूरत नहीं। यही न ?

नीलांबर सहसा इस अभियोग का कोई जवाब न दे सका। कुछ देर तक चुपचाप धरती की ओर देखता रहा। फिर आँख उठाकर धीरे-से

बोला—यह तुम्हारे मन की वात कभी नहीं है। तुमको दुःख पहुँचा है, कष्ट हुआ है, इसी से क्रोध में कह रही हो। तुम अच्छी तरह जानती हो कि मैं स्वर्ग में वैठकर भी तुम्हारा कष्ट सहन नहीं कर सकूँगा।

विराज ने कहा—पहले मैं भी ऐसा ही समझती थी। लेकिन जैसे कष्ट में पड़े विना कष्ट क्या है, यह ठीक-ठीक समझ में नहीं आता, वैसे ही मर्दों की माया-ममता भी। समय आये विना उसका भी ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। लेकिन इन दोपहर में मैं तुमसे झगड़ा नहीं करना चाहती। मैं जो कहती हूँ, वह करो। जाओ, स्नान कर आओ।

'जाता हूँ' कहकर भी नीलांवर वहीं चुपका वैठा रहा।

विराज ने फिर कहा—पूंटी के व्याह को दो साल होने को आते हैं। उसके पहले से आज तक की सव वातों पर मैंने उस दिन मन में विचार कर देखा है—तुमने मेरी एक भी वात नहीं सुनी। जव जो कुछ मैंने कहा, उसे तुमने काट दिया और अपने मन का काम करते गये। आदमी अपने घर के नौकर-चाकर की भी एक वात रख लेता है, मगर तुमने वह भी नहीं रक्खी।

नीलांवर कुछ कहने ही वाला था कि विराज ने वीच ही में रोककर कहा—ना—ना, मैं तुमसे वहस नहीं करूँगी। कितने वड़े दुःख और घृणा से इष्ट देव का नाम लेकर मैंने क़सम खाई है कि तुमसे कोई वात नहीं कहूँगी। आज अगर एकाएक वात न उठ पड़ती तो तुम यह सव मेरे मुँह से न सुन पाते। अव शायद तुमको याद न आवे, वचपन में मैं सिर-दर्द से एक दिन सो गई थी, द्वार खोलने में देर हो गई थी, इससे तुम मुझे मारने चले थे। तुमको यह विश्वास नहीं हुआ था कि मेरी तवियत ख़राव है। उसी दिन से मैंने क़सम खाई थी कि अपनी वीमारी की वात कभी तुमसे नहीं कहूँगी। आज तक मेरी वह क़सम कभी नहीं टूटी।

नीलांवर के सिर उठाते ही दोनों की आँखें मिल गईं। नीलांवर सहसा उठ आकर, विराज के दोनों हाथ पकड़कर, घवराये हुए स्वर में कह उठा—यह न होगा विराज। तुम्हारी तवियत ठीक नहीं है। वताओ, क्या वीमारी है ? तुम्हें वताना ही होगा।

धीरे से अपने हाथ छुड़ाने की चेष्टा करते हुए विराज ने कहा—छोड़ो, लगता है।

नीलांवर ने कहा—लगने दो, वताओ, क्या हुआ है ?

विराज ने सूखी हँसी हँसकर कहा—कहाँ, कुछ भी तो नहीं हुआ ! भली चंगी हूँ ।

नीलांबर को विश्वास नहीं हुआ । बोला—नहीं, चंगी नहीं हो । होतीं तो कई साल पुरानी बात की चर्चा करके मेरा जी न दुखातीं—खासकर जिसके लिए मैं अनेक वार क्षमा माँग चुका हूँ ।

"अच्छा अव कभी न कहूँगी" कहकर विराज अपने को छुड़ाकर, कुछ हटकर बैठ गई ।

नीलांबर उसका मतलव समझ गया, किन्तु फिर कुछ वोला नहीं । दो-तीन मिनट चुपका बैठा रहा, फिर उठकर चल दिया ।

रात को दिया जलाकर विराज चिट्ठी लिख रही थी । नीलांवर पलंग पर लेटा चुपचाप देख रहा था । एकाएक बोल उठा—इस जन्म में तो तुमको तुम्हारा शत्रु भी कोई दोप या अपराध नहीं लगा सकता, लेकिन तुम्हारे पूर्व-जन्म का पाप था, नहीं तो ऐसा कभी न होता ।

विराज ने सिर उठाकर पूछा—क्या न होता ?

नीलांवर ने कहा—तुम्हारा सम्पूर्ण तन और मन भगवान् ने राजरानी के योग्य ही वनाया था; परन्तु...

विराज ने पूछा—परन्तु क्या ?

मगर नीलांवर चुप रहा ।

क्षणभर उत्तर की प्रतीक्षा करने के वाद विराज ने रूखे स्वर में कहा—यह खवर भगवान् तुमको कव दे गये ?

नीलांवर ने कहा—आँख-कान हों तो सभी को भगवान् खबर दे जाते हैं ।

"हूँ" कहकर विराज फिर चिट्ठी लिखने लगी ।

दम-भर चुप रहकर नीलांबर ने कहा—उस दिन कहा था कि मैंने तुम्हारी कोई बात नहीं सुनी, यही शायद सच है । लेकिन क्या वह अकेला मेरा ही दोप है ?

विराज ने फिर सिर उठाकर देखा और कहा—अच्छा तो मेरा दोप ही वता दो ।

नीलांबर ने कहा—तुम्हारा दोष तो नहीं दिखा सकूँगा। लेकिन आज एक सच बात कहूँगा। तुम अपने साथ अन्य स्त्रियों की तुलना करके ही देखती हो लेकिन यह एक बार भी नहीं सोचती हो कि तुम जैसी कितनी स्त्रियाँ ऐसे गुणहीन मूर्ख के पाले पड़ी हैं। यही तुम्हारे पुर्वले जन्म का पाप है। नहीं तो तुम्हें दुःख-कष्ट सहन करने की बात ही नहीं थी।

बिराज चुपचाप चिट्ठी लिखती रही। जान पड़ता है, उसने मन में विचारा कि इसका जवाब न दूंगी। लेकिन उससे रहा न गया। मुँह घुमाकर पूछा—तुम क्या यह समझते हो कि ये सब बातें सुनकर मैं खुश होती हूँ ?

नीलांबर ने पूछा—कौन बातें ?

बिराज ने कहा—यही, जैसे मैं राजरानी हो सकती थी, सिर्फ तुम्हारे हाथ में पड़कर ऐसी हो गई हूँ। तुम शायद समझते हो कि यह सब सुनकर मुझे प्रसन्नता होती है, या जो ये बातें कहता है, उसका मुँह देखने को जी चाहता है ?

नीलांबर ने देखा, बिराज का क्रोध बहुत बढ़ गया है। वह नहीं समझता था कि बात इतनी बढ़ जायगी। इसी से वह भीतर ही भीतर कुण्ठित और संकुचित हो उठा। लेकिन एकाएक वह यह भी न सोच सका कि क्या कहकर उसे प्रसन्न करे।

बिराज ने कहा—रूप, रूप, रूप। सुनते-सुनते कान पक गये। लेकिन और जो लोग कहते हैं, उनकी नजर में विशेषरूप से शायद यही पड़ता है। पर तुम तो मेरे पति हो, बहुत ही छोटी अवस्था से तुम्हारे आश्रय में इतनी बड़ी हुई हूँ। तुमको भी क्या इससे अधिक मुझमें और कुछ नहीं देख पड़ता ? मुझमें क्या यह रूप ही सबसे बड़ी चीज़ है ? तुम क्या समझकर यह बात ज़बान पर लाते हो ? मैं क्या रूप का रोज़गार करती हूँ, या इसी रूप में तुमको फँसा रखना चाहती हूँ ?

नीलांबर बहुत डर गया। घबराकर कह उठा—ना ना, यह नहीं...।

बिराज बीच ही में बोल उठी—ठीक यही। इसी से मैंने एक दिन तुम से पूछा था कि अगर मैं काली-कुत्सित होती तो तुम मुझे प्यार करते या नहीं, याद है ?

नीलांबर ने सिर हिलाकर कहा—याद है। लेकिन उस समय तुम्हीं ने

तो कहा था...।

विराज ने कहा—हां, कहा था कि तुम काली-कुत्सित होने पर भी मुझ पर प्यार करते, क्योंकि मुझ से विवाह किया है। मैं गिरिस्त की बेटी और गिरिस्त की बहू हूँ। मुझे ये बातें सुनाते तुमको लाज नहीं लगती ? पहले भी तुम ने यह बात कही थी—बोलते-बोलते क्रोध और अभिमान से उसकी आँखों में आँसू भर आये और वे दीपक के प्रकाश में चमकने लगे।

यह देखते ही नीलांबर ने चट पलंग से उतर कर उसका हाथ पकड़ लिया। विराज ने स्वयं ही एक दिन कह दिया था कि हाथ पकड़ लेने से फिर क्रोध नहीं रहता।

नीलांबर को एकाएक वही बात याद आ गई। उसने एकाएक उठ कर विराज का दाहिना हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया और चुपचाप उसके पास बैठ गया।

विराज ने बाएँ हाथ से अपनी आँखें पोंछ डालीं।

उस रात को बड़ी देर तक दोनों प्राणी चुपचाप जागते रहे। नीलांबर ने एकाएक पत्नी की ओर मुँह घुमाकर मीठी वाणी से पूछा—आज तुम्हें इतना क्रोध क्यों आ गया विराज ?

विराज ने कहा—तुमने वैसी बात क्यों कही ?

नीलांबर ने कहा—मैंने तो कोई बुरी बात नहीं कही।

विराज फिर बिगड़ उठी। अधीर भाव से बोली—फिर भी कहते हो कि बुरी बात नहीं कही ? बहुत बुरी बात है ! अत्यन्त खराब ! इसी के लिए तो सुन्दरी को...।

कहते-कहते विराज रुक गई। चुप हो रही।

दमभर चुप रहकर नीलांबर ने कहा—केवल इसी अपराध पर तुम ने सुन्दरी को जवाब दे दिया ?

केवल 'हूँ' कहकर विराज चुप रही।

नीलांबर ने भी फिर कुछ नहीं पूछा।

विराज तब आप ही आप कहने लगी—देखो, जिद न करो। मैं कोई दुधमुँही बच्ची नहीं हूँ, भला-बुरा सब समझती हूँ। उसने छुड़ा देने के लायक काम किया था, इसी से उसे छुड़ा दिया। क्यों छुड़ा दिया, क्या बात हुई,

यह सव वातें अगर तुम मर्दों ने न सुन पाईं तो न सही !

नीलांवर ने कहा—ना, अव मैं सुनना भी नहीं चाहता। यों कहकर एक ठंडी सांस लेकर, धीरे-से करवट वदलकर, नीलांवर सो रहा।

वँटवारे के दो-चार दिन वाद ही छोटे भाई पीतांवर ने वीच से चटाई और वांस की टट्टी खड़ी करके अपना हिस्सा अलग कर लिया था। दक्खिन की ओर दूसरा दरवाजा फोड़ लिया था और उसके सामने एक छोटी-सी वैठक वना ली थी। अपने घर को अच्छी तरह सजाकर—सुन्दर और साफ सुथरा वनाकर वह वड़े आराम से रह रहा था। यों तो पहले भी वह वड़े भाई से अधिक वोलता चालता नहीं था। पर अव सारे ही संवंध विल्कुल टूट गये थे। इस तरफ विराज को प्रायः दिन भर अकेले ही रहना पड़ता था। सुन्दरी के जाने के वाद से सव काम-धंधा तो उसे करना ही पड़ता था, उसके अलावा पहले जो काम दासी करती थी, उन कामों को लोकलाज के मारे पास परोस के लोगों की नज़र वचाकर वह एकान्त में कर लेती थी और इसीलिए उसे अधिक रात गये तक जागना पड़ता था।

एक दिन इसी तरह वह काम कर रही थी, इतने में एकाएक उस तरफ से, टट्टी की संधि से, किसी ने धीमी और मीठी आवाज़ से पुकारा—जीजी, रात तो वहुत हो गई है।

विराज ने चौंककर सिर उठाया। पुकारने वाले ने वैसी ही आवाज़ में धीरे-से फिर कहा—जीजी, मैं हूँ मोहिनी।

विराज ने विस्मित होकर कहा—कौन, छोटी वहू ? इतनी रात गये ?

मोहिनी ने कहा—हाँ जीजी, मैं हूँ। ज़रा पास आओ।

विराज उठकर टट्टी के पास गई। छोटी वहू ने धीरे-से पूछा—जेठजी क्या सो गये ?

विराज ने कहा—हाँ।

मोहिनी ने कहा—जीजी, एक वात है, लेकिन कह नहीं सकती। इतना कहकर वह चुप हो गई।

उसके कण्ठ का स्वर सुनकर विराज को मालूम हुआ कि छोटी वहू रो रही है। चिन्तित होकर पूछा—क्या हुआ छोटी वहू ?

मोहिनी तुरन्त जवाब न दे सकी। जान पड़ा, वह आँचल से आँसू पोंछती हुई अपने को सँभाल रही है।

अब घबराकर विराज ने पूछा—क्या हुआ छोटी बहू, बोलती क्यों नहीं ?

अब की भर्राये हुए गले से मोहिनी ने कहा—जेठ जी के ऊपर नालिश हुई है। कल, उसे क्या कहते हैं, सम्मन निकलेगा। क्या होगा जीजी ?

विराज डर गई, लेकिन उसने अपने मन का भाव छिपाते हुए कहा—सम्मन निकलेगा तो इसमें डरने की क्या बात है छोटी बहू ?

मोहिनी ने पूछा—तो कुछ डर नहीं है जीजी ?

विराज ने कहा—डर क्या है ! लेकिन नालिश किसने की है ?

छोटी बहू ने कहा—भोला मुखर्जी ने।

विराज क्षणभर सन्नाटे में आकर खड़ी रही। फिर बोली—हाँ, मैं सब समझ गई, अब और कहने की ज़रूरत नहीं। मुखर्जी का पावना उन पर है न, इसी से जान पड़ता है उसने नालिश कर दी है। मगर इसमें डरने की बात नहीं है छोटी बहू। इसके बाद दोनों ही चुप हो रहीं। कुछ देर बाद छोटी बहू ने कहा—जीजी, मैंने तुम से कभी अधिक बातचीत नहीं की। मैं बात करने योग्य भी नहीं हूँ। क्या आज अपनी इस छोटी बहन की एक बात मानोगी ?

उसकी आवाज़ से ही विराज का हृदय आर्द्र हो गया था। अब और अधिक आर्द्र होकर बोली—क्यों न मानूँगी बहन ?

मोहिनी ने कहा—तो फिर ज़रा इधर हाथ बढ़ाओ।

बिराज के हाथ बढ़ाते ही एक छोटे कोमल हाथ ने उसी टट्टी की संधि से बाहर निकलकर उसके हाथ पर एक सोने का हार रख दिया।

विराज ने विस्मित होकर कहा—यह क्यों दे रही हो छोटी बहू ?

छोटी बहू ने आवाज़ को और भी धीमा करके कहा—इसे बेचकर या गिरों रखकर, जिस तरह हो, उसका कर्ज चुका दो जीजी।

जिसे पहले सोचा भी न था, ऐसी इस अकस्मात् बिना माँगे मिलने वाली सहानुभूति ने कुछ देर के लिए विराज को अभिभूत कर दिया। उसके मुख से कोई बात न निकल सकी। लेकिन "जाती हूँ जीजी" कहकर जब

छोटी बहू वहाँ से हटने लगी, तब वह जल्दी से पुकार उठी—जाओ नहीं छोटी बहू, सुनो।

छोटी बहू ने लौट आकर पूछा—क्यों जीजी ?

विराज ने टट्टी की उसी संधि से तुरत वह हार उस तरफ फेंककर कहा—छी, ऐसा न करना चाहिए !

छोटी बहू ने हार उठाकर क्षोभ के स्वर में पूछा—क्यों जीजी ? क्यों न करना चाहिए ?

विराज ने कहा—छोटे लल्ला सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?

बहू ने कहा—लेकिन वह तो सुन न पावेंगे ?

आज न सही, दो दिन बाद तो उनको मालूम ही हो जायगा। तब क्या होगा ?

छोटी बहू ने कहा—उनको कभी न मालूम होगा जीजी। पारसाल मेरी माँ मरते समय छिपाकर मुझको यह हार दे गई थी। तब से मैंने इसे न कभी पहना और न कभी बाहर निकाला। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ जीजी, इसे ले लो।

उसकी इस कातर प्रार्थना को सुनकर विराज की आँखों से आँसू गिर पड़े। उसने स्तब्ध होकर आश्चर्य के साथ अपने मन में इस नारी के व्यवहार के साथ, जिससे रक्त-मांस का कोई सम्बन्ध नहीं, घर के दो सहोदर भाइयों के बरताव की तुलना करके देखी। फिर हथेली से आँखें पोंछकर, रूँधे हुए गले से कहा—आज की यह बात मरते दम तक याद रहेगी बहन। लेकिन यह हार तो मैं ले नहीं सकूँगी। इसके सिवा छोटी बहू, किसी को अपने पति से छिपाकर कोई भी काम नहीं करना चाहिए। इससे तुम्हें और मुझे, दोनों को पाप का भागी होना पड़ेगा।

छोटी बहू ने कहा—तुम सब बातें नहीं जानती हो, इसी से कहती हो। धर्म-अधर्म का खयाल मुझको भी तो है जीजी। मैं ही मरते समय क्या जवाब दूँगी ?

फिर एक बार आँखें पोंछ कर, अपने को सँभाल कर विराज ने कहा—मैंने और सब को पहचाना छोटी बहू, केवल तुम को ही इतने दिन तक नहीं पहचान सकी। लेकिन तुम्हें मरते समय कोई जवाब न देना पड़ेगा। वह

जवाब इसी बीच तुम्हारे अन्तर्यामी ने आप ही लिख लिया है। अब जाओ, बहन, बहुत रात हो गई, जाकर सो रहो। यों कहकर, कुछ कहने का मौक़ा न देकर, बिराज जल्दी से वहाँ से हट गई।

लेकिन वह भीतर भी नहीं जा सकी। अँधेरे बरामदे में एक किनारे धोती का आँचल बिछाकर लेट रही। इस समय नालिश और मुक़दमे की बात उसे याद नहीं रही। उस थोड़ा बोलने वाली कमसिन छोटी बहू की करुणा और सहानुभूति से भरी बातें ही उसे याद आने लगीं। उसकी आँखों से झरने की तरह निरन्तर जल पड़ने लगा। आज उसके हृदय में सबसे अधिक दुःख इस बात का कचोटने लगा कि इतने दिन तक, इतने पास रहकर भी वह छोटी बहू को न पहचान सकी, पहचानने की चेष्टा तक नहीं की। यह सच है कि उसने पीठ पीछे कभी छोटी बहू की निन्दा नहीं की, लेकिन कभी अपनापे के साथ उससे कोई अच्छी बात भी नहीं की। बहुत तेज़ बिजली की चमक जैसे दमभर में तीव्र अन्धकार को चीर देती है, वैसे ही छोटी बहू आज उसके हृदय को भीतरी तह तक चीरकर प्रकाशित कर गई। सोचते-सोचते, रोते-रोते न जाने कब वह सो गई। अचानक किसी का हाथ लगने से वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। उसने देखा, नीलांबर उसके सिरहाने बैठा हुआ है।

नीलांबर ने संक्षेप में कहा—भीतर चलो, रात लगभग समाप्त होने को है।

बिराज ने कुछ नहीं कहा। वह स्वामी की देह का सहारा लेकर चुपचाप भीतर जाकर निर्जीव की तरह पड़ रही।

६

एक साल बीत गया। अब की साल रुपए में दो आने भी फसल हाथ नहीं लगी। जिस धरती से लगभग साल-भर तक भरण-पोषण होता था, उसमें से बहुत-सी तो उसी मोहल्ले के भोलानाथ मुखर्जी ने खरीद ली है। रहने का घर तक गिरों हो गया है। यह भी सब को मालूम हो गया कि छोटे भाई पीतांबर ने ही गुप्त रूप से उसे लिखा लिया है। हल का एक

बैल मर गया है। पोखर धूप से चिटक गया है। बिराज को अब किसी तरफ देखकर कूल-किनारा नजर नहीं आता। शरीर के किसी स्थान को बहुत देर तक बाँध रखने से जिस तरह एक असह्य अथ च अव्यक्त मन्द यातना से सारा शरीर धीरे-धीरे अवसन्न होने लगता है, सारे संसार से उसका संबंध भी वैसा ही हो चला। पहले बिराज जब-तब हँसती थी, कोई बात निकालकर किसी मिस से हँसी-दिल्लगी कर बैठती थी, लेकिन अब उस घर में ऐसा कोई भी आदमी न था, जिससे वह बात करे। यहां तक कि अगर कोई मिलने-भेंटने आता, या उसका हाल-चाल जानना चाहता, तो भी वह मन में चिढ़ जाती है। वह स्वभाव से अभिमानिनी है, अब पास-पड़ोस के लोगों की साधारण बात से भी बिगड़ उठती है। गिरिस्ती के किसी काम में अब उसे तनिक भी उत्साह नहीं है, यह उसके काम को देखने से ही मालूम हो जाता है। उसके कमरे का पलँग और बिछौना मैला पड़ा है। कपड़े टाँगने की अलगनी पर अस्त-व्यस्त कपड़े पड़े रहते हैं। चीज-वस्तु बेतरतीब छितरी पड़ी रहती हैं। झाड़ू देकर कूड़ा कमरे के ही एक कोने में लगा देती है। उसे उठाकर बाहर फेंकने की भी शक्ति जैसे अब उसे अपने शरीर में ढूंढ़े नहीं मिलती।

इसी तरह दिन कट रहे थे। बीच में नीलांबर ने अपनी छोटी बहन हरिमती को ले आने की दो बार कोशिश की, लेकिन उन लोगों ने नहीं भेजा। पंद्रह दिन के लगभग हुए, उसने एक पत्र लिखा था। हरिमती के ससुर ने उसका जवाब तक नहीं दिया। किन्तु बिराज के आगे उसका नाम तक नहीं लिया जा सकता। वह एकदम आग-बबूला हो जाती है। उसने पूँटी को पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, माता के समान प्यार किया, मगर आजकल उसका संस्रव तक उसके लिए जहर हो गया है।

आज सबेरे नीलांबर गाँव के डाकखाने से सूखा हुआ उदास मुँह लिए लौटा और घर में आकर बोला—पूँटी के ससुर ने जवाब तक न दिया! जान पड़ता है, इस बार की दुर्गा पूजा पर भी बहन को न देख पाऊँगा।

बिराज ने काम करते-करते एक बार सिर उठाया, शायद कुछ कहना चाहा। लेकिन बिना कुछ बोले ही उठ गई।

उसी दिन दोपहर को जब नीलांबर भोजन करने बैठा, तब उसने धीरे

से कहा—उसका नाम लेते ही तुम जल उठती हो। लेकिन उसने क्या कोई अपराध किया है ?

विराज पास ही बैठी थी। आँख उठाकर बोली—मैं जल उठती हूँ, यह किसने कहा ?

नीलांबर बोला—कहेगा कौन ? मैं आप ही जो देखता हूँ।

विराज क्षणभर पति का मुँह ताकती रही। फिर बोली—देखते हो तो अच्छा है और उठकर जाने लगी। नीलांबर ने टोककर कहा—भला बताओ, आजकल तुम ऐसी क्यों होती जा रही हो ! जैसे बिल्कुल ही बदल गई हो !

विराज ने घूमकर नीलांबर की बात ध्यान देकर सुनी। बोली—दूसरों के बदलने से ही बदल जाना पड़ता है और फिर बाहर हो गई।

इसके दो-तीन दिन बाद, तीसरे पहर, बाहर के चण्डीमण्डप में अकेला बैठा नीलांबर गुनगुनाकर कुछ गा रहा था। विराज उसके पीछे आकर कुछ देर चुपचाप रही। फिर सामने आकर खड़ी हो गई।

नीलांबर ने सिर उठाकर कहा—क्या है ?

विराज तीखी नज़र से ताकती रही, कुछ जवाब न दिया।

नीलांबर के सिर नीचा करते ही विराज ने रूखी आवाज़ में कहा—ज़रा फिर सिर उठाओ, देखूँ।

नीलांबर ने न सिर उठाया, न कुछ उत्तर ही दिया, चुप रहा।

विराज पहले की ही तरह कठोर-भाव से बोली—आँखें तो खूब लाल हैं। क्या दम लगाना फिर शुरू कर दिया ?

नीलांबर कुछ नहीं बोला। डर से आँखें नीची किये काठ का पुतला-सा बैठा रहा। एक तो वह सदा से विराज से डरता है, दूसरे इधर कुछ दिनों से वह बारूद का ढेर बन गई है। यह अन्दाजने का भी कोई उपाय न था कि वह कब किस घड़ी कैसे भभक उठेगी।

कुछ देर तक विराज भी स्थिर-भाव से खड़ी रही। फिर बोली—यही ठीक है ! गाँजे का दम लगाकर 'बम भोला बाबा' बन बैठने का यही तो समय है। यह कहकर वह भीतर चली गई।

यह दिन बीत गया। दूसरे दिन नीलांबर से नहीं रहा गया। लाज-

संकोच सब त्याग कर सवेरे ही पीतांबर को बाहर के कमरे में बुला लाया और बोला—पूँटी के ससुर ने मुझे तो जवाब तक नहीं दिया। तुम भी एक बार कोशिश करके देखो, शायद बहन को दो दिन के लिए घर ला सको।

पीतांबर भाई के मुँह की ओर देखकर बोला—तुम्हारे रहते भला मैं क्या कोशिश करूँगा ?

नीलांबर उसकी धूर्तता समझकर भीतर से क्रुद्ध हुआ। लेकिन भरसक मन-का भाव छिपाकर बोला—पूँटी जैसे मेरी बहन है, वैसे ही तुम्हारी भी तो है। न हो, समझ लो, मैं मर गया—अब तुम ही अकेले हो।

पीतांबर ने कहा—जो सत्य नहीं है उसे मैं तुम्हारी तरह नहीं समझ सकता। इसके अलावा जब तुम्हारी चिट्ठी का उत्तर नहीं दिया, तब वे मेरी ही चिट्ठी का क्यों देने लगे !

नीलांबर ने छोटे भाई की इस बात को भी सह लिया। कहा—जो सत्य नहीं है, वही मैं समझ लेता हूँ ! खैर, ऐसा ही सही। इस बात पर मैं तुम से झगड़ा करना नहीं चाहता। लेकिन मेरी चिट्ठी का जवाब तो वह इसलिए नहीं देते कि व्याह की सब शर्तों को मैं पूरा नहीं कर सका।—लेकिन इन सब बातों के लिए तो मैंने तुम को बुलाया नहीं है। यह बताओ कि जो कहता हूँ, वह कर सकोगे या नहीं ?

पीतांबर ने सिर हिलाकर कहा—नहीं। व्याह के पहले मुझ से पूछा था ?

नीलांबर ने कहा—पूछने से क्या होता ?

पीतांबर ने कहा—अच्छी सलाह ही देता।

नीलांबर के माथे में आग-सी जल उठी। उसके होठ काँपने लगे। फिर भी उसने अपने को सँभालकर कहा—तो तुम यह नहीं कर सकोगे ?

पीतांबर ने कहा—जी नहीं। जैसे पूँटी के ससुर, वैसे ही मेरे ससुर। वह गुरुजन हैं—बड़े हैं। वह जब भेजना नहीं चाहते, तब उनके खिलाफ़ मैं कोई बात नहीं कह सकता। यह मेरा स्वभाव नहीं है।

उसकी बात सुनकर एक बार नीलांबर का जी चाहा कि लाठी से उसका यह मुँह तोड़ दे। लेकिन नहीं, उसने अपने को रोका, संभाला। खड़े होकर कहा—अच्छा जाओ, निकलो—मेरे आगे से हट जाओ।

पीतांबर भी क्रोधित हो उठा, बोला, खामखाँ क्यों गुस्सा होते हो ? न जाऊँ तो क्या ज़बर्दस्ती भगा दे सकते हो ?

नीलांबर ने हाथ से दरवाजा दिखाते हुए कहा—बुढ़ापे में मार खाकर यदि जान नहीं देना चाहते, तो हट जाओ मेरे आगे से !

फिर भी पीतांबर कुछ कहने वाला था कि नीलांबर ने रोककर कहा—बस, अब एक शब्द भी नहीं—जाओ।

गँवार नीलांबर का शारीरिक बल सुप्रसिद्ध था।

पीतांबर को फिर कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। वह धीरे-से बाहर हो गया।

यह कहा-सुनी सुनकर बिराज बाहर निकल आई और पति का हाथ पकड़कर भीतर खींच ले गई। बोली—छि: ! सब-कुछ जान-सुनकर भी क्या भाई से झगड़ा किया जाता है, जिसमें सब लोग हँसें !

नीलांबर ने उद्धत भाव से कहा—जानता हूँ तो क्या डर से दब जाऊँ ? मैं सब सह सकता हूँ बिराज, लेकिन धूर्तता नहीं।

बिराज ने कहा—लेकिन तुम तो अकेले नहीं हो। वह अगर हाथ पकड़कर बाहर निकाल दें, तो जाकर कहाँ खड़े होंगे—यह भी कभी सोचा है ?

नीलांबर ने कहा—नहीं। जो सोचने वाले हैं, वे सोचेंगे। मैं सोचकर बेकार दुखी नहीं होता।

बिराज ने कहा—ठीक है ! ढोल बजाना और महाभारत पढ़ना जिसका काम है, उसके लिए सोचना-बिचारना मिथ्या है !

यह बात बिराज ने हँसी में नहीं कही और नीलांबर के कानों में भी उससे अमृत वर्षा नहीं हुई, तो भी नीलांबर ने सहज भाव से ही कहा—उसे मैं सबसे बड़ा काम ही मानता हूँ। इसके सिवा, चिन्ता करते-रहने से क्या माथे का लिखा मिट जायगा ? फिर माथे में एक बार हाथ लगाकर बोला—देखो बिराज, यहाँ लिखा होने के कारण ही कितने ही राजों-महाराजों को पेड़ों के नीचे रहना पड़ा है—मैं तो एक बहुत ही तुच्छ मनुष्य हूँ।

बिराज भीतर-ही-भीतर जली जा रही थी। बोली—यह सब मुंह से

कह देना जितना सहज है, काम में परिणत करना उतना सहज नहीं है। इसके सिवा, पेड़ के नीचे तुम भले ही रह सको, मैं तो नहीं रह सकती ! स्त्रियों को हया-शरम होती है। चाहे खुशामद करके, चाहे दासी-वृत्ति करके, मुझे तो एक आश्रय में रहना ही होगा। अगर तुम छोटे भाई का मन रखकर न चल सको तो कम-से-कम उससे हाथापाई करके सब-कुछ मिट्टी तो न कर दो ! अपनी आँखों के आंसुओं को रोककर तेज़ी के साथ वह बाहर निकल गई।

इसके पहले पति और पत्नी में कई-बार कहा-सुनी और कलह हो चुकी है, नीलांबर उससे परिचित है। लेकिन आज जो कुछ हो गया, वह कलह नहीं था। यह मूर्ति उसके निकट सर्वथा अपरिचित थी। वह स्तंभित होकर खड़ा रह गया।

कुछ देर बाद ही विराज उस कमरे में आकर बोली—इस तरह हक्के बक्के से क्यों खड़े हो ? दिन चढ़ आया है, जाओ, नहा-धोकर पूजा-पाठ करके दो कौर खा लो। जितने दिन मिलता है, उतने दिन। यों कहकर, फिर एक बार पति के कलेजे में शूल भोंककर वह चली गई।

इस कमरे की दीवार में राधा-कृष्ण का एक पट लटका था। उसकी ओर देख-देखकर नीलांबर सहसा रो पड़ा। लेकिन कोई देख न ले, इस डर से फ़ौरन ही आँखें पोंछकर बाहर चला गया।

और विराज ? उस दिन दिन-भर उसका यह हाल रहा कि बार-बार उसकी आँखों में आँसू भर-भर आते थे। जिसका थोड़ा भी कष्ट उससे सहा न जाता था, उसी को ऐसी कठोर बात जबसे उसने कह डाली, तभी से उसके दुःख की और आत्म-ग्लानि की सीमा नहीं थी। दिन-भर उसने एक बूंद पानी भी मुँह में नहीं डाला। रोती हुई बेकार ही इधर से उधर—इस कोठरी से उस कोठरी में जाती रही। इसके बाद सन्ध्या के समय तुलसी के वृक्ष के आगे दीपक जलाकर, गले में आँचल डालकर, उसने प्रणाम किया तो फफक कर ज़ोर से रो उठी।

सारे घर में कोई न था, सन्नाटा छाया था। नीलांबर घर में नहीं था। दोपहर को थाली पर एक बार बैठकर ही उठ गया था, तब से अभी तक लौटा न था।

विराज क्या करे, कहाँ जाय, किससे कहे, क्या कहे ? आज सब तरफ देखने पर भी कोई उपाय न दिखाई दिया। वह उसी जगह अँधेरे आँगन में औंधी पड़ कर फूट-फूटकर रोने लगी। केवल यही उसके मुँह से निकलने लगा—मेरे अन्तर्यामी देवता, एक वार मेरी ओर आँख उठाकर देखो ! जो आदमी कोई दोष, कोई पाप करना नहीं जानता, उसको अब कष्ट न देना देवता ! मैं अब और नहीं सह सकूँगी।

उस समय रात के नव बज गये थे। नीलांबर चुपचाप आकर पलंग पर लेट रहा।

विराज कोठरी में जाकर, उसके पैरों के पास बैठ गई। मगर नीलांबर ने उसकी ओर न तो देखा और न कोई बात ही की।

कुछ देर के बाद बिराज ने पति के पैर पर अपना एक हाथ रक्खा, लेकिन नीलांबर ने तुरन्त ही पैर हटा लिया। पाँच-चार मिनट और भी चुपचाप ही बीत गये। बिराज का सोया हुआ अभिमान फिर धीरे-धीरे जगने लगा। तो भी वह मीठे स्वर में बोली—चलो भोजन कर लो।

नीलांबर कुछ नहीं बोला। विराज ने कहा—आज दिन-भर कुछ नहीं खाया। किस पर खफ़ा हो, ज़रा सुनूँ ?

नीलांबर ने इसका भी कुछ जवाव नहीं दिया।

बिराज ने कहा—बताओ न !

नीलांबर ने उदास भाव से कहा—सुनकर क्या होगा ?

बिराज ने कहा—तो भी सुनूँ तो सही।

अबकी नीलांबर सहसा उठ बैठा और बिराज के चेहरे पर शूल-सी तीखी नज़र गड़ाकर बोला—मैं तुमसे बड़ा, गुरुजन हूँ बिराज, कोई खिलौना नहीं हूँ !

उसकी उस दृष्टि और गले की आवाज़ से बिराज भय-चकित और स्तब्ध हो गई—ऐसा आर्त और गंभीर कण्ठ-स्वर तो उसने और कभी किसी दिन नहीं सुना था !

७

मागरा के गंज में पीतल के कब्जे ढालने के कई कारखाने थे। इस मुहल्ले की चांडाल जाति की लड़कियाँ मिट्टी से साँचे वनाकर वहाँ वेच आती थीं। असह्य दु:ख की ज्वाला से जलती हुई विराज ने उनमें से एक लड़की को वुलाकर उससे साँचे वनाना सीख लिया था। वह बहुत ही बुद्धिमती और काम करने में असाधारण चतुर थी। दो ही दिनों में यह काम सीखकर वह सबसे अच्छे साँचे बनाने लगी। अब बैपारी खुद आकर नगद पैसे देकर उससे साँचे खरीद ले जाने लगे। इस तरह वह रोज़ आठ-दस आने पैसे कमा लेने लगी। मगर लाज के मारे अपने पति के आगे इस बात को प्रकट नहीं कर सकी।

नीलांबर जव सो जाता, तव वहुत रात गये वह चुपचाप पलंग से उठ आती और यह काम करती थी। आज रात को भी वह साँचे वनाने आई और थकावट के कारण किसी समय उसी जगह सो गई। नीलांवर की आँख एकाएक खुल गई। पलंग पर किसी को न देख पाकर वह वाहर निकल आया। विराज के हाथ उस समय भी कीचड़-मिट्टी से भरे हुए थे और आस-पास वने हुए साँचे इधर-उधर पड़े थे। वहीं एक तरफ ठण्ड में गीली ज़मीन पर, वह सो रही थी।

आज तीन दिन से पति और पत्नी में वोलचाल नहीं थी। तप्त आँसुओं से नीलांवर की दोनों आँखें भर आईं। वह फौरन वहीं वैठ गया और उसने विराज के ज़मीन पर लुढके हुए सिर को सावधानी से अपनी गोद में रख लिया। पर विराज को कुछ खवर नहीं हुई, केवल एक वार ज़रा हिल डुलकर, दोनों पैरों को और समेटकर वह अच्छी तरह सो रही। नीलांवर ने बाएँ हाथ से अपनी आँखें पोंछ डालीं और दूसरे हाथ से पास ही रक्खे हुए टिमटिमाते दीपक को ज़रा उज्ज्वल करके एकटक पत्नी के मुख की ओर निहारने लगा। यह क्या हो गया! कहाँ, इतने दिन तो उसने देखा नहीं! विराज की आँखों के कोनों में इतनी स्याही दौड़ गई है! भौंहों के ऊपर सुन्दर सुडौल माथे पर दुश्चिन्ता की इतनी सुस्पष्ट रेखा देख पड़ रही है! एक समझ में न आने वाली अव्यक्त असीम वेदना से

उसका सम्पूर्ण हृदय भीतर ही भीतर जैसे मसोस उठा। असावधानी से एक बड़ी-सी आँसू की बूँद बिराज की बंद आँख की पलक पर टपक पड़ी। उसके गिरते ही बिराज ने आँख खोलकर देखा। क्षणभर चुपचाप ताकती रही। फिर दोनों हाथ फैलाकर पति की छाती से लिपट गई और गोद में मुँह छिपाकर करवट लेकर चुपचाप पड़ी रही। नीलांबर उसी तरह बैठा-बैठा रोने लगा। बड़ी देर तक कोई कुछ नहीं बोला। फिर जब रात बीतने को हुई, पूर्व आकाश में पौ फटने लगी, तब नीलांबर ने सँभलकर, प्रकृतिस्थ होकर, पत्नी के मस्तक पर हाथ रखकर स्नेहपूर्वक कहा—अब और ठंड में मत पड़ी रहो, घर में चलो विराज।

"चलो" कहकर विराज उठी और पति का हाथ पकड़कर कोठरी के भीतर जाकर सो रही।

तड़के ही नीलांबर ने कहा—जाओ बिराज, कुछ दिन अपने मामा के घर घूम-फिर आओ। मैं भी ज़रा कलकत्ते हो आऊँ।

विराज ने पूछा—कलकत्ते जाकर क्या होगा ?

नीलांबर ने कहा—वहाँ पैसा कमाने के कितने ही रास्ते हैं। वहाँ कोई-न-कोई सूरत निकल ही आवेगी। कहा मानो बिराज, दो-चार महीने वहाँ जाकर रहो।

बिराज ने पूहा—कितने दिन में मुझे बुला लोगे ?

नीलांबर ने कहा—छः महीने के भीतर ही बुला लूँगा, वचन देता हूँ।

"अच्छा" कहकर बिराज सहमत हो गई।

चार-पाँच दिन के बाद बैलगाड़ी आई। विराज के मामा के घर को आठ-दस कोस तक बैलगाड़ी पर ही जाना होता है। लेकिन बिराज के व्यवहार में यात्रा का कोई लक्षण न देख पड़ा।

नीलांबर व्यस्त होकर ताकीद करने लगा।

बिराज काम करते-करते कह बैठी—आज तो मैं न जाऊँगी। मेरी तबियत ठीक नहीं है।

नीलांबर विस्मय से अवाक् होकर बोला—तबियत खराब है ?

बिराज ने कहा—हाँ, तबियत खराब है, बहुत खराब है। यों कहकर मुँह लटकाये, पीतल की कलसी कमर पर उठाकर नदी से पानी लाने के

लिए चल दी। उस दिन गाड़ी लौट गई। रात को वहुत कुछ समझाने-बुझाने, मनाने पर उससे दो दिन वाद जाना मंजूर किया। दो दिन के वाद फिद गाड़ी आई।

नीलांवर ने आकर खवर दी, तो विराज एकदम पलट गई। वोली—नहीं, मैं कभी न जाऊँगी।

नीलांवर ने और भी विस्मित होकर कहा—जाओगी क्यों नहीं ?

विराज रोने लगी—नहीं, मैं न जाऊँगी। मेरे पास गहने कहाँ हैं ? अच्छे कपड़े कहाँ हैं ? मैं दीन-दुखियों के समान किसी तरह नही जाऊँगी।

नीलांवर ने गुस्से से कहा—आज सचमुच तुम्हारे पास गहने नही हैं, मगर जब थे तव तो तुमने एक दिन भी उनकी ओर आँख उठाकर नहीं देखा।

बिराज चुपचाप धोती के छोर से आँखें पोंछने लगी।

नीलांवर ने फिर कहा—यह छल मैं समझता हूँ। मेरे मन में सन्देह तो पहले ही से था, लेकिन सोचा था, दुःख-कष्ट से तुम्हें होश आ गया होगा। मगर अव देखता हूँ, कुछ नहीं आया। अच्छी वात है, तुम भी सूख-सूखकर मरो और मैं भी मरूँ। कहकर नीलांवर ने गाड़ी लौटा दी।

दोपहर को नीलांवर घर के भीतर सो रहा था। पीतांवर भी अपने घन्धे से गया था। छोटी वहू ने टट्टी की संधि से कोमल स्वर में धीरे से कहा—जीजी, बुरा न मानना—कसूर माफ करना, मैं तुमको क्या समझाऊँ, दो दिन को चली क्यों न गई ?

यिराज कुछ न वोली।

छोटी वहू ने कहा – जेठजी को रोक न रक्खो जीजी ! विपदा के समय एक वार दिल कड़ा कर लो—दो दिन वाद भगवान् जरूर कृपाकरेंगे।

बिराज ने धीरे-से कहा—मैं तो दिल कड़ा ही किये हूँ छोटी बहू !

छोटी वहू ने कुछ ज़ोर देते हुए कहा—तो जाओ जीजी, जेठजी को मर्दों की तरह पैसा कमाने दो। मैं कहती हूँ, दो दिन में तुम्हारे ऊपर भगवान् ज़रूर प्रसन्न होंगे।

बिराज ने एक बार सिर उठाकर कुछ कहना चाहा, लेकिन फिर सिर झुकाकर चुप रह गई।

छोटी वहू ने कहा—जा न सकोगी जीजी ?

अब भी बिराज ने सिर हिलाकर कहा—नहीं। सवेरे नींद से उठकर उनका मुँह देखे बिना मैं एक दिन भी नहीं बिता सकूँगी। जो मुझसे नहीं हो सकता, वह काम करने के लिए मुझसे मत कहो छोटी बहू। इतना कहकर वह जाने लगी। इतने में छोटी बहू ने सहसा रुआँसी आवाज़ में पुकारकर कहा—जाओ नहीं, जीजी, कुछ दिन के लिए तुमको यहाँ से जाना ही पड़ेगा। गये बिना मैं कभी न मानूँगी।

बिराज घूमकर खड़ी हो गयी। दम-भर स्थिर भाव से खड़ी होकर बोली—ओह, समझ गई! शायद सुन्दरी आई थी?

छोटी बहू ने सिर हिलाकर कहा—आई थी।

बिराज ने कहा—इसी से चले जाने को कहती हो?

बहू ने कहा—हाँ, इसीलिए कहती हूँ जीजी, तुम यहाँ से चली जाओ। बिराज फिर कुछ देर तक चुप रही। इसके बाद बोली—एक कुत्ते के डर से घर छोड़कर भाग जाऊँ?

बहू बोली—कुत्ता जब पागल हो जाता है तो उससे डरना ही होता है जीजी! इसके सिवा अकेले तुम्हारे ही लिए नहीं। सोचकर देखो, इसे लेकर और भी क्या-क्या अनिष्ट हो सकते हैं?

बिराज कुछ देर तक फिर चुप रही। उसके बाद उद्धत भाव से सिर उठाकर बोली—नहीं, किसी तरह न जाऊँगी। और यह कहकर छोटी बहू को प्रत्युत्तर का अवकाश न देकर तेजी से हट गई।

मगर अब उसे जैसे डर लगने लगा। उसके घाट के ठीक सामने उस पार दो दिन से बड़ी धूम-धाम से एक नहाने का घाट बनाया जा रहा था और नदी में पानी न रहने पर भी मछली पकड़ने का मचान बँध रहा था। बिराज मन ही मन समझ गई कि यह सब क्यों हो रहा है। नीलांबर एक दिन स्नान करके आया तो पूछा—उस पार यह घाट कौन लोग बाँध रहे हैं? बिराज एकाएक बिगड़ उठी, बोली—मैं क्या जानूँ? और तेज़ी से हट गई।

उसका भाव देखकर नीलांबर अवाक् हो गया। किन्तु उसी दिन से बिराज ने वक्त-बेवक्त पानी भरने के लिए नदी पर जाना एकदम बन्द कर दिया। वह या तो बहुत तड़के और या कुछ रात बीते नदी पर जाती।

इसके सिवा हज़ार काम अटकने पर भी कभी उधर मुँह न करती। लेकिन भीतर ही भीतर घृणा, लज्जा और क्रोध के मारे मानो उसका दम घुटने लगा। अथ च इस अत्याचार और अकथ्य अशिष्टता के खिलाफ़ वह अपने पति के आगे भी मुँह न खोल सकी।

चार दिन बाद एक दिन नीलांबर ही घाट से लौटकर हँसते हुए बोला—नये ज़मींदार का साज-बाज देखती हो विराज ?

विराज समझकर अनमने भाव से बोली—देखती क्यों नहीं ?

नीलांबर हँसते-हँसते बोला—मैं सोचता हूँ कि यह आदमी पागल तो नहीं है। नदी में दो-चार छोटी मछलियाँ रहने लायक तो जल नहीं है, लेकिन यह आदमी नदी में एक बड़ी गिर्रीदार बंसी डाले दिन भर बैठा रहता है।

विराज चुप रही। वह किसी तरह अपने पति की हँसी का साथ न दे सकी।

नीलांबर कहने लगा—मगर यह तो ठीक नहीं है। भले आदमियों के खिड़की-घाट के सामने सारा दिन उसके बैठे रहने से स्त्रियाँ, लड़कियाँ कैसे जायँगी ? अच्छा, तुम लोगों को तो निश्चय ही बड़ी असुविधा होती होगी ?

विराज ने कहा—होती है तो क्या किया जाय ?

नीलांबर ने कुछ उत्तेजित होकर कहा—लेकिन ऐसा क्यों हो ? बंसी लेकर पागलपन करने को क्या और कोई जगह नहीं है ? ना, ना, कल सवेरे ही कचहरी जाकर कह आऊँगा कि शौक है तो और कहीं बंसी डालकर बैठा करो। लेकिन हमारे घर के सामने यह सब नहीं हो सकेगा।

पति की बात सुनकर विराज डर गई। उहने व्यस्त होकर कहा—ना, ना, तुमको यह सब कहने जाने की ज़रूरत नहीं। नदी सिर्फ़ हमारी ही नहीं है, जो तुम मना कर आओगे।

नीलांबर विस्मित हो उठा। बोला—तुम कहती क्या हो विराज ? न सही हमारे अकेले की, किन्तु क्या उसे अच्छे-बुरे का विचार न करना चाहिए ? मैं कल ही जाकर कह आऊँगा। न मानेगा तो मैं खुद यह सब घाट-वाट तोड़-फोड़कर फेंक दूँगा। इसके बाद जो कर सके कर ले।

सुनकर विराज सन्नाटे है आ गई। फिर धीरे-से बोली—तुम ज़मींदार से झगड़ा करने जाओगे ?

नीलांबर ने कहा—क्यों न जाऊँगा ? बड़ा आदमी है तो क्या जी-चाहा अत्याचार करेगा और उसे सहते रहना होगा ?

विराज ने कहा—साबित कर सकोगे कि वह अत्याचार करता है ?

नीलांबर ने झल्लाकर कहा—मैं इती बहस के बखेड़े में नहीं पड़ता। साफ देख रहा हूँ कि अन्याय कर रहा है और तुम कहती हो साबित कर सकोगे ? कर सकूँगा या नहीं, यह मैं देख लूँगा।

विराज क्षण-भर पति के मुँह की ओर स्थिर दृष्टि से ताकती रही। फिर बोली—देखो दिमाग़ तनिक ठण्डा रखो। जिनको दोनों जून खाने को नहीं जुरता, उनके मुँह से यह बात सुनकर लोग थू-थू करेंगे।

नीलांबर ने कहा—कैसे ?

विराज ने कहा—और कैसे ? तुम ज़मीदार के लड़के से लड़ना चाहते हो।

ऐसे रूढ़ भाव से यह बात विराज के मुँह से बाहर निकली कि नीलांबर से सही न गई। वह एकदम आग-बबूला हो उठा। ज़ोर से चीखकर बोला—तू मुझे कुत्ता बिल्ली समझती है क्या, जो हर घड़ी खाने का ताना दिया करती है ! तुझे कब दोनों जून खाने को नहीं जुरा ?

दुख-कष्ट उठाते-उठाते विराज में पहले का सा धीरज और सहनशीलता नहीं रह गई थी। वह भी जल उठी और बोली—बेकार चिल्लाओ नहीं। जिस तरह दोनों जून खाना जुरता है, सो तुम अवश्य नहीं जानते—लेकिन मैं जानती हूँ और मेरे अन्तर्यामी जानते हैं। इस बारे में अगर तुम कुछ कहने जाओगे तो मैं ज़हर खा लूँगी। —कहते-कहते विराज ने सिर उठाकर देखा, नीलांबर का चेहरा एकदम विवर्ण हो गया है। उसकी दोनों आँखों में विह्वल हत्बुद्धि दृष्टि है। उस नज़र के सामने बिराज एकदम सकुचाकर-सिमटकर, ज़रा-सी हो गई। वह एक भी बात न कहकर धीरे-से खिसक गई। उसके चले जाने पर भी नीलांबर उसी तरह खड़ा रहा। उसके बाद एक लम्बी साँस छोड़कर, बाहर जाकर, चण्डीमण्डप में एक किनारे स्तब्ध होकर बैठ गया।

उसके प्रचण्ड क्रोध ने सोचे-समझे बिना एक ऐसी जगह, जो ऊँची न थी, ज़ोर से सिर उठाया ही था कि वैसे ही ज़ोर की टक्कर खाकर वह बिल्कुल निस्पन्द जड़ हो रहा। नीलांबर के कानों में विराज की यही आखिरी बात गूँजने लगी थी कि "गिरिस्ती कैसे चलती है ?" उसे उस अँधेरी गहरी रात में घर के बाहर धरती पर लेटी हुई विराज का थका हुआ वही सुस्त मुँह रह-रहकर याद आने लगा। सच ही तो है ! यह तो अब उसे जानने को बाकी नहीं रह गया कि दिन कैसे कटते हैं और यह असहाय नारी कैसे अकेले गिरिस्ती चला रही है। कुछ ही पहले विराज की कठोर बात तीर की तरह ही उसके हृदय में लगी थी; किन्तु अब वह बैठे-बैठे जितना ही सोचने लगा, उतना ही उसके हृदय का वह घाव, वह क्षोभ, केवल भरने और मिटने ही नहीं लगा, बल्कि धीरे-धीरे वह श्रद्धा और विस्मय के रूप में बदलता भी दिखाई देने लगा। उसकी विराज तो केवल आज की विराज नहीं है, वह कितने ही समय की—कितने ही युग-युगान्तर की है। उसका विचार तो केवल दो दिन के व्यवहार, दो-एक असहिष्णु बातों से ही नहीं किया जा सकता। उसका हृदय किस चीज से भरा है, यह बात तो उससे बढ़कर और कोई नहीं जानता।

अबकी बार नीलांबर की आँखों से झर-झर करके आँसू गिरने लगे। वह अकस्मात् दोनों हाथ जोड़कर, मुँह ऊपर उठाकर, रुँधे गले से कह उठा—भगवान्, मेरा जो कुछ है, सब ले लो—लेकिन मेरी विराज को न लेना !

यह कहते ही इच्छा का एक प्रचण्ड झोंका जैसे उसे प्रियतमा को हृदय से ज़ोर से चिमटा लेने के लिए उसकी ओर ढकेलने लगा।

वह दौड़कर विराज के बंद दरवाज़े के सामने आकर खड़ा हो गया। दरवाज़ा भीतर से बंद था। उसने धक्का देकर आवेगपूर्ण काँपते हुए स्वर में पुकारा—विराज !

विराज धरती पर औंधी पड़ी रो रही थी। चौंककर उठ बैठी।

नीलांबर ने कहा—क्या करती हो विराज—दरवाज़ा खोलो।

विराज डरती हुई चुपचाप दरवाज़े के पास आकर खड़ी हो गई।

नीलांबर ने व्यस्त होकर कहा—खोल दो न विराज !

अवकी विराज ने रुआँसी-सी होकर धीरे-से कहा—तुम मारोगे तो नहीं, वोलो ?

नीलांवर ने कहा—मारूँगा !

यह वात तेज़ धार की छुरी की तरह नीलांवर के कलेजे में जाकर लगी। वेदना, लज्जा और अभिमान से उसका कण्ठ रुँध गया। वह संज्ञाहीन की तरह चौखट का एक वाजू पकड़कर खड़ा रहा। विराज ने तो यह कुछ देखा नहीं, इसलिए अनजान में ही छुरी पर छुरी मारती हुई रोकर वोली—अव फिर कभी मैं ऐसी वात नहीं कहूँगी—वोलो, मारोगे तो नहीं ?

नीलांवर अस्पष्ट स्वर में किसी तरह केवल 'ना' भर कह सका। डरते-डरते धीरे-धीरे जैसे विराज ने कुंडी खोली, वैसे ही नीलांवर लड़खड़ाता हुआ भीतर घुसकर आँखें मूँदकर पलँग पर जाकर पड़ रहा।

उसकी मुँदी हुई दोनों आँखों के कोनों से लगातार आँसुओं की धारा वह चली। पति का ऐसा चेहरा उसने और कभी नहीं देखा था। अव सव उसकी समझ में आ गया। सिरहाने के पास वैठकर वड़े प्रेम और स्नेह से स्वामी का सिर अपनी गोद में रखकर वह आँचल से उसके आँसू पोंछने लगी।

धीरे-धीरे संध्याकाल का अंधकार घर में फैलने और घना होने लगा। तो भी किसी ने मुँह नहीं खोला, कोई वात नहीं की। अँधेरे में दोनों चुपचाप स्थिर पड़े रहे। किन्तु पति और पत्नी में मन-ही-मन जो वातें हो गईं, उन्हें जान पड़ता है, केवल उनके अन्तर्यामी ने ही सुना।

८

फिर भी नीलांबर सोच रहा था विराज यह वात अपनी जवान पर कैसे लाई ? विराज के मन में इतनी वड़ी हीन धारणा कैसे उत्पन्न हुई कि वह उसे मार सकता है ? एक तो गिरिस्ती के दुःख कष्टों की कोई हद नहीं, उस पर रोज-रोज यह क्या होने लगा ? दो दिन नहीं वीतते कि झगड़ा हो जाता है। वात-वात में मनोमालिन्य, सामना होते ही कलह

पग-पग पर मतभेद ! सबसे बड़ी बात यह है कि उसकी ऐसी बिराज दिन पर दिन कैसी होती जा रही है और सब ओर देखने पर भी इस दुःख के सागर का किनारा कहीं दिखाई नहीं देता। भगवान् के श्रीचरणों में नीलांबर की अटल भक्ति थी, भाग्य के लेख पर बेहद विश्वास था। वह यही विचारने लगा। उसने मन में किसी को दोष नहीं दिया, किसी को बुरा नहीं कहा—किसी की निन्दा नहीं की। चण्डीमण्डप में दीवार पर टँगे हुए राधाकृष्ण की जुगल जोड़ी के चित्र के सामने खड़े होकर वह रोकर कहने लगा—मेरे भगवान्, अगर इतने दुःख में डालना ही चाहते थे तो मुझको इतना निरुपाय क्यों बनाया तुमने ?

वह कितना निरुपाय है, इस बात को उससे बढ़कर कोई नहीं जानता। लिखना-पढ़ना सीखा नहीं, कोई काम-काज करना जानता नहीं। जानता था केवल दीन-दुखियों की सेवा करना, सीखा था केवल भगवान् का नाम लेना और भजन करना। इससे दूसरों का दुःख-कष्ट अवश्य दूर होता था; लेकिन आज कुसमय में उसका अपना दुःख कैसे दूर हो ? अब तो उसके पास कुछ भी नहीं है, सब चला गया। इसी से दुःख की ज्वाला में जलते-जलते उसने कितनी बार अपने मन में सोचा है कि अब यहाँ नहीं रहूँगा, जिधर सूझ पड़ेगा उधर विराज को लेकर चला जाऊँगा। पर क्या इस सात पीढ़ियों के घर को छोड़कर, किसी देव-मन्दिर के द्वार पर बैठकर, अथवा किसी वृक्ष के नीचे पड़कर वह सुखी हो सकेगा ? यह छोटी-सी नदी, यह पेड़-पौधों से घिरा हुआ घर, जन्म के परिचित घर और बाहर के लोगों के मुख, सबको छोड़कर किसी देश में अथवा स्वर्ग में भी जाकर क्या वह एक दिन भी जीवित रह सकेगा ? इसी घर में उसकी माँ मरी है, इसी चण्डी मण्डप की दालान में उसने अन्त समय अपने पिता की सेवा की है और उन्हें गंगा पहुँचाया है, यहीं उसने पूँटी को सेया-पाला है—उसका ब्याह किया है। इस घर की, इस स्थान की ममता वह किस तरह छोड़ सकेगा ?

वह वहीं बैठकर, दोनों हाथों से अपना मुँह ढककर रुँधे हुए गले से रोने लगा। उसको क्या यही, इतना ही दुःख है ? अपनी प्यारी बहन को वह कहाँ दे आया कि उसकी कोई खबर तक नहीं मिल पाती ! कितने

दिनों से उसने बहन को नहीं देख पाया—उसका उच्च कण्ठ से 'दादा' कहकर पुकारना भी नहीं सुन पाया ! पराये घर में वह क्या दुःख उठा रही है, कितना रो-कलप रही है, यह कुछ भी वह नहीं जान सका। अथवा विराज के आगे उसका नाम लेना भी कठिन है। वह उसे पाल-पोसकर भी इस तरह भुला सकी है, लेकिन वह कैसे भूले ? वह पेट की सगी सहोदरा बहन है; उसे गोद में लेकर, कन्धे पर चढ़ाकर इतना बड़ा किया है; जहाँ कहीं गया, उसे भी साथ ले गया और इसके लिए कितने ही व्यंग्य-उपहास सहे हैं। लेकिन पूंटी को रोते छोड़कर वह किसी तरह घर के बाहर एक पग भी नहीं जा सका है। ये सब बातें वह जानता है और छोटी बहन जानती है। विराज जानती हुई भी नहीं जानती, कभी एक बात भी नहीं कहती। पूंटी के विषय में वह जैसे पत्थर की मूर्ति की तरह सदा के लिए एकदम गूंगी बन गई है। यह खयाल भी नीलांबर के कलेजे में शूल-सा चुभता है कि उसने मन-ही-मन उसकी निरपराध बहन को अपराधी बना रक्खा है। किन्तु इस विषय की जरा-सी चर्चा करने तक का रास्ता बन्द है। कोई बात चलाते ही विराज उसे रोककर कह उठती है—ये सब बातें रहने दो। वह राजरानी हो—लेकिन उसकी बातों की जरूरत नहीं। वह राजरानी शब्द का उच्चारण कुछ इस तरह से करके उठ जाती है कि नीलांबर के हृदय के भीतर आग-सी सुलग उठती है। वह इसी आशंका से मन-ही-मन व्याकुल हो उठता है कि कहीं उस पर गुरुजनों का शाप न पड़े और कहीं उसका अकल्याण न हो जाय। वह भगवान् से प्रार्थना करता था, छिपाकर प्रसाद चढ़ाकर नदी में बहा आता था। इसी तरह उसके दिन कट रहे थे।

दुर्गापूजा आ पहुँची। अब उससे रहा नहीं गया। विराज से छिपाकर कहीं से कुछ थोड़े रुपये संग्रह करके एक धोती और कुछ मिठाई मोल लेकर उसने सुन्दरी को जाकर पकड़ा।

सुन्दरी ने बैठने के लिए आसन बिछा दिया, तमाखू भर लाई। नीलांबर ने आसन पर बैठकर अपने फटे-पुराने मैले दुपट्टे के भीतर से वह धोती निकालकर कहा—देख सुन्दरी, तूने तो उसे पाला-पोसा है। जा, एक बार देख आ। वह आगे न बोल सका, मुंह फेरकर उसने चादर से

आँखें पोंछ ली।

सुन्दरी इन लोगों के कष्ट की बात जानती थी। गाँव के सभी जानते थे। उसने पूछा—वह कैसी है बड़े बाबू ?

नीलांबर ने गर्दन हिलाकर कहा—मालूम नहीं।

सुन्दरी में बुद्धि विवेचना थी। उसने और कोई प्रश्न नहीं किया। दूसरे दिन सवेरे ही जाने की बात कहने से नीलांबर उसे कुछ राह-खर्च देने को तैयार हुआ, पर सुन्दरी ने नहीं लिया, कहा—नहीं बड़े बाबू, तुमने धोती मोल ले ली, नहीं तो यह भी मैं न ले जाती—तुम्हारी ही तरह मैंने भी तो उसे आदमी बनाया है।

नीलांबर की आँखों से फिर आँसू गिर पड़े। वह मुँह फेरकर बार-बार उन्हें पोंछने लगा। ऐसी समवेदना उसने किसीसे नहीं पाई थी। सभी कहते हैं कि उसने भूल की है, अन्याय किया है, पूंटी के ही कारण उसका यह सर्वनाश हुआ है।

नीलांबर ने उठते-उठते सुन्दरी को विशेष सावधान कर दिया कि उसके दुःख-कष्ट की खबर पूंटी के कान में न पड़ने पावे। नीलांबर के चले जाने पर अब की सुन्दरी ने भी आँचल से अपने आँसू पोंछ लिये। इस आदमी को सभी मन ही मन प्यार करते थे—सभी भक्ति करते थे।

उस दिन विजयादशमी थी। तीसरे पहर विराज ने सोने की कोठरी में जाकर भीतर से दरवाजा वन्द कर लिया। सन्ध्या होते न होते कोई चाचा कहकर घर में घुस आया, और किसी ने नीलू दादा, नीलू भैया, कहकर बाहर ही से आवाज़ लगाई।

सूखा मुँह लिये नीलांबर चण्डीमण्डप से निकलकर सामने आ खड़ा हुआ। यथानियम किसी ने प्रणाम किया, कोई गले मिला। फिर सब भाभी को प्रणाम करने के लिए भीतर की ओर चले।

उनके साथ-साथ नीलांबर ने भी आकर देखा कि बिराज रसोईघर में भी नहीं है। सोने की कोठरी का द्वार भी वन्द है। उसने किवाड़ों में धक्का देकर पुकारा—लड़के तुमको प्रणाम करने के लिए आये हैं बिराज !

बिराज ने भीतर ही से कहा—मुझे बुखार है, उठ नहीं सकती।

सबके चले जाने पर थोड़ी ही देर में फिर किसी ने धक्का दिया, लेकिन

विराज वोली नहीं। दरवाज़े के वाहर से ही धीरे-से किसी ने कहा—जीजी, मैं हूँ मोहिनी, ज़रा दरवाज़ा खोलो।

फिर भी विराज ने जवाव नहीं दिया।

मोहिनी वोली—यह न होगा जीजी। सारी रात इस दरवाज़े पर खड़ा रहना पड़े तो भी खड़ी रहूँगी—किन्तु आज तुम्हारा आशीर्वाद लिये विना इस जगह से नहीं हटूँगी।

अव दरवाज़ा खोलकर विराज सामने आ खड़ी हुई। उसने देखा, मोहिनी के वाएँ हाथ में खाने की सामग्री की टोकरी और दाहिने हाथ के पात्र में छनी हुई भाँग है। दोनों चीज़ें पैरों के पास रखकर मोहिनी ने बिराज के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया। फिर कहा—मुझे केवल यही असीस दो जीजी, कि मैं तुम्हारी जैसी हो सकूँ। वस, इसके सिवा मैं तुम्हारे मुँह से और कोई असीस नहीं चाहती।

बिराज ने सजल आँखों को आँचल से पोंछकर चुपचाप छोटी वहू के झुके हुए सिर पर हाथ रख दिया।

मोहिनी खड़ी होकर वोली—आज त्योहार के दिन आंसू नहीं गिराना चाहिए; मगर मैं यह तुमसे तो कह नहीं सकती जीजी! अगर तुम्हारी देह की हवा भी मेरी देह को छू गई हो, तो उसी के ज़ोर से कहे जाती हूँ कि अगले साल ऐसे ही दिन वह वात कहूँगी।

मोहिनी के जाने पर विराज ने वह सामग्री उठाकर कोठरी में रख दी और स्थिर निश्चल वैठ रही। आज वह और भी अच्छी तरह समझ गई कि मोहिनी दिन-रात उस पर आँख रखती है।

इसके वाद कितने ही लड़के आये गये, मगर विराज ने फिर दरवाज़ा बन्द नहीं किया। वही सव चीजें देकर आज का आचार पूरा किया गया।

दूसरे दिन सवेरे वह क्लान्तभाव से वरामदे में वैठी साग सँभाल रही थी कि सुन्दरी ने आकर प्रणाम किया।

विराज ने असीस देकर वैठने को कहा।

वैठते ही सुन्दरी ने कहा—कल रात हो गई थी, इसी से आज सवेरे ही कहने आई हूँ। लेकिन चाहे जो कहो वहू, ऐसा जानती तो मैं कभी न जाती।

विराज की समझ में न आया। वह उसका मुँह ताकने लगी।

सुन्दरी कहने लगी— घर में कोई नहीं है। सव लोग घूमने के लिए पछाँह गये हैं। है एक बूढ़ी बुआ। उसकी वह कड़ी-कड़ी वातें क्या कहूँ। वोली—लौटा ले जा। दामाद तक को एक धोती नहीं भेजी, खाली एक सूती धोती लेकर पूजा का व्यवहार चुकाने आई है!—इसके वाद नीच, चमार, वेहया आदि न जाने क्या-क्या वकती रही, जिसके कहने से कुछ फायदा नहीं।

विराज ने विस्मित होकर पूछा—किसने किसे कहा रे ?

सुन्दरी ने कहा—और किसे, हमारे वड़े वावू को।

विराज अधीर हो उठी। वह कुछ भी नहीं जानती थी, इसीसे कुछ भी न समझ पाई। उसने कहा—हमारे वावू को किस ने कहा, सो तो वता।

अब की सुन्दरी ने कुछ विस्मित होकर कहा—वही तो मैं इतनी देर से कह रही हूँ वहू! पूंटी की बूढ़ी फुफिया सास को कितना घमंड, कितना दिमाग है, धोती नहीं ली, लौटा दी। कहकर उसने वह धोती आँचल के भीतर से निकालकर रख दी।

अव विराज सव समझ गई। वह एकटक उस धोती की ओर ताकने लगी। उसके भीतर और वाहर आग लग गई।

नीलांवर वाहर गया था, कव लौटेगा—इसका कुछ ठीक न था। सुन्दरी उसकी राह न देख सकी, चली गई।

दोपहर को नीलांवर भोजन करने बैठा था। भीतर आकर, वह धोती उसके सामने कुछ दूर पर रखकर विराज ने कहा—सुन्दरी लौटाकर दे गई है।

सिर उठाकर देखते ही नीलांवर डर से एकदम मुरझा गया। उसने कल्पना भी न की थी कि यह भेद इस तरह विराज के आगे खुल जायगा। उसने कुछ भी नहीं पूछा, चुपचाप सिर झुका लिया।

विराज ने कहा—उन्होंने क्यों नहीं ली, क्यों भरपेट गालियाँ देकर लौटा दी, यह सव सुन्दरी के पास जाकर सुन लेना।

फिर भी नीलांबर ने न तो सिर उठाया और न कोई और बात ही सुनने की इच्छा प्रकट की। बिराज भी चुप रही।

नीलांबर की भूख-प्यास, सब एकदम जाती रही। वह झुके हुए भीत

मुख से केवल यही अनुभव करने लगा कि विराज स्थिर दृष्टि से देख रही है और उस दृष्टि से आग वरस रही है।

शाम को नीलांवर सुन्दरी के घर गया, वार-वार पूछकर सब वातें सुनीं। फिर कहा—जब पछाँह घूमने गये हैं तो ज़रूर ही वह मज़े में है, क्यों न सुन्दरी ?

सुन्दरी ने सिर हिलाकर कहा—मज़े में तो है ही वावूजी।

नीलांवर का मुँह खिल उठा। वोला—तुमने देखा, कितनी वड़ी हो गई है ?

सुन्दरी ने हँसकर कहा—भेंट तो हुई नहीं वावूजी !

अपने प्रश्न पर लज्जित होकर नीलांवर ने कहा—ठीक है, लेकिन नौकर-चाकरों से तो सुना होगा ?

सुन्दरी ने कहा—नहीं वावू ! मरी फुफिया सास ने ऐसी जली-कटी सुनाईं, ऐसे हाथ-पैर फेंके और मटकाये कि पूछती क्या, भागते राह ही नहीं मिली !

दम-भर क्षुब्ध मुख से स्थिर रहकर कहा—अच्छा, मेरी पूँटी पहले से कुछ दुवली हो गई है या कुछ मोटी-ताज़ी ? तुझे कैसा लगता है ?

प्रश्नों का उत्तर देते-देते सुन्दरी क्लान्त हो गई थी। संक्षेप में कह दिया—मोटी ही हुई होगी।

आशा से उत्सुक होकर नीलांवर ने पूछा—जान पड़ता है, सुन आई है, क्यों ?

सुन्दरी ने गर्दन हिलाकर कहा—नहीं वावू, सुन तो कुछ भी नहीं आई।

तो फिर जाना कैसे ?

अव की सुन्दर खीझ उठी। वोली—जाना और कहाँ से ! तुम ने पूछा कि तुझे कैसा लगता है, इसी से कह दिया कि शायद मोटी ही हुई होगी।

नीलांवर सिर झुकाकर धीरे-से वोला—ठीक है।

इसके वाद सुन्दरी के मुँह की ओर चुपचाप देखते रहकर, एक ठंडी साँस लेकर वह उठ खड़ा हुआ। वोला—अच्छा तो आज जाता हूँ, फिर

किसी दिन आऊंगा।

सुन्दरी ने शान्ति की साँस ली। असल में उसका कसूर न था। एक तो कहने को कुछ था नहीं, उस पर दो घंटे से लगातार एक ही बात को सैकड़ों तरह से कह-कहकर भी वह नीलांबर के कौतूहल को मिटा नहीं सकी थी।

उसने जल्दी से कहा—हाँ बाबू, रात हुई, आज जाओ। और किसी दिन ज़रा सवेरे आना, तब सब बातें होंगी।

इतनी देर बाद नीलांबर का ध्यान सुन्दरी की उत्कण्ठापूर्ण व्यस्तता की ओर गया और वह "जाता हूँ" कहकर चल दिया।

सुन्दरी की घबराहट का एक विशेष कारण था।

उस मोहल्ले के निताई गांगुली इसी समय प्रायः नित्य ही एक बार उसकी सुधि लेकर अपने चरणों की धूल दे जाते थे। उनकी यह धूल कहीं मालिक के सामने ही यहाँ न आ पड़े, इसी आशंका से उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। यद्यपि अनेक कारणों से उसके भाग्य जग गये थे, और ज़मींदार के अनुग्रह से उसकी लज्जा गर्व में ही बदल गई थी, तो भी इस निष्कलंक साधु-चरित्र ब्राह्मण के आगे अपनी हीनता प्रकट हो जाने की संभावना से वह लाज के मारे मरी जा रही थी।

नीलांबर के चले जाने पर वह पुलकित चित्त से दरवाज़ा बंद करने आई, किन्तु सामने नज़र डालते ही देख पड़ा कि नीलांबर लौटा आ रहा है। वह किवाड़ा पकड़कर खीझ के साथ उसकी प्रतीक्षा करने लगी। उसके मुख पर द्वादशी के चन्द्रमा का प्रकाश पड़ रहा था।

नीलांबर निकट आकर ज़रा हिचका, फिर अपने चादरे के खूँट से एक अठन्नी खोलकर, सलज्ज कोमल स्वर में बोला—तुझसे कुछ लज्जा नहीं है सुन्दरी, सभी कुछ तू जानती है। सिर्फ यह अठन्नी है, इसे ले ले। कहकर वह हाथ उठाकर देने लगा। सुन्दरी जीभ काटकर पीछे हट गई।

नीलांबर ने कहा—तुझे कितना कष्ट दिया, जाने-आने का खर्च भी न दे सका। और कुछ न बोला गया, आँसुओं से उसका कण्ठावरोध हो गया।

सुन्दरी ने क्षणभर कुछ सोचा, फिर हाथ आगे करके कहा—दीजिए, कुछ भी हो, आप मेरे सदा के मालिक हैं। मेरा 'ना' कहना शोभा नहीं

देता।

यह कहकर उसने वह अपने हाथ में ले ली। फिर उसे माथे से छुआकर आँचल में बाँधती हुई बोली—तो फिर जरा भीतर आइए। इतना कहकर वह भीतर चली गई। नीलांबर उसके पीछे जाकर आँगन में खड़ा हो गया।

सुन्दरी ने क्षणभर में ही लौटकर नीलांबर के पाँव के पास मुट्ठी-भर रुपए रखकर जमीन पर सिर रखकर प्रणाम किया और वह पैरों की धूल माथे से लगाकर खड़ी हो गई।

नीलांबर को विस्मय से हत्बुद्धि हो खड़े देखकर उसने कुछ हँसकर कहा—इस तरह खड़े होकर ताकने से तो काम न चलेगा बाबू! मैं चिरकाल की दासी हूँ। शूद्र होने पर भी यह जोर सिर्फ मेरा ही है।

यों कहकर, झुककर, रुपये उठाकर वह नीलांबर के चादरे में बाँधती हुई मृदु कंठ से बोली—बाबूजी, ये रुपए आप ही के दिये हुए हैं। तीर्थ-यात्रा के लिए देवता के नाम से इन्हें अलग रख दिया था। सो जाना तो हो नहीं सका, आज देवता स्वयं ही घर आकर ले गये।

अब भी नीलांबर से कुछ बोला नहीं गया। अच्छी तरह बाँधकर सुन्दरी ने कहा—बहूजी घर में अकेली हैं। अब आप जाइए, लेकिन देखिए, उन्हें यह बात किसी तरह मालूम न होने पावे।

नीलांबर कुछ कहना ही चाहता था कि सुन्दरी बाधा देकर कह उठी—हजार कहिए, मैं नहीं सुनूंगी। आज मेरा मान न रक्खेंगे, तो सच जानिए, मैं सिर पटककर मर जाऊँगी।

अभी तक सुन्दरी के हाथ में चादरे का वह सिरा था। इसी बीच "क्या हो रहा है जी?" कहते हुए निताई गांगुली खुले दरवाज़े से भीतर सीधे आँगन में आकर खड़े हो गये। सुन्दरी ने चादरा छोड़ दिया और नीलांबर बाहर चला गया।

क्षणभर निताई मुँह बाये अवाक् खड़े रहे। बोले—यह छोकरा तो नीलू था न?

सुन्दरी मन में तो क्रोधित हुई, पर सहज-भाव से बोली—हाँ, मेरे मालिक थे।

निताई ने कहा—सुनता हूँ, घर में खाने को भी नहीं है। इतनी रात को यहाँ···?

काम था, इसी से आये थे।

"ओह, काम था ?" कहकर निताई होंठ दबाकर मुसकिराये। भाव यह कि उन जैसे बूढ़े आदमी की आँख में धूल झोंकना सहज नहीं है।

सुन्दरी उस मुसिकुराहट का मतलब स्पष्ट समझ गई। निताई की अवस्था पचास साल के ऊपर ही थी। सिर के बारह आने बाल पक गये थे। मूँछ दाढ़ी सफाचट, सिर पर मोटी चोटी, मस्तक पर सवेरे का चन्दन का तिलक अभी तक यथास्थान था। सुन्दरी उनकी ओर एकटक देखती रही। उस दृष्टि का अर्थ समझ लेना निताई के लिए संभव न था। इसी से कुछ उत्तेजित होकर कह उठे—इस तरह क्यों देख रही हो ?

देख रही हूँ।

क्या देख रही हो ?

देख रही हूँ कि तुम भी ब्राह्मण हो और जो चले गये, वह भी ब्राह्मण हैं; लेकिन दोनों में कितना आकाश-पाताल का अन्तर है !

बात समझ न पाने के कारण निताई ने पूछा—कैसा अन्तर ?

सुन्दरी मुसकाकर बोली—बूढ़े आदमी ठहरे, ओस में न खड़े रहो। ऊपर दालान में आकर बैठो। मैं कसम खाकर कहती हूँ गांगुली महाशय, तुम्हारी तरफ़ देखकर सोच रही थी कि मेरे मालिक के पैरों की तनिक-सी रज पाकर ही तुम-जैसे कितने ही गांगुली तर जाते !

सुन्दरी की यह बात सुनकर निताई क्रोध और विस्मय से ताकते रह गये, उनके मुँह से बोल नहीं फूटा। सुन्दरी ने चिलम उठा ली और तमाखू भरते-भरते बिलकुल ही सहज भाव से कहा—क्रोध न करो ब्राह्मण देवता, मैंने सच बात ही कही है। आज ही नहीं, बराबर देखती आ रही हूँ। मालिक के जनेऊ की ओर देखते ही आँखें चौंधिया जाती हैं, मालूम पड़ता है, जैसे उनके गले पर आसमान की बिजली कौंध रही है। और अपना जनेऊ देखो, देखते हँसी आती है। कहते-कहते वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। निताई पहले ही से ईर्ष्या की आग में जल रहे थे, अब क्रोध से पागल हो उठे। उनकी आँखें लाल अंगारा हो गईं। चिल्लाकर कहा—इतना घमंड न कर

सुन्दरी, मुँह सड़ जायगा !

सुन्दरी ने चिलम फूँकते हुए पास आकर हँसकर कहा—कुछ न होगा। लो, तमाखू पियो। मुँह तो तुम्हीं लोगों का मरने पर नहीं जलेगा, जो मेरे दुखी मालिक को देखकर हँसते हो।

निताई हुक्का फेंककर उठ खड़े हुए। सुन्दरी ने उनके दुपट्टे का एक सिरा पकड़ लिया और हँसते हुए कहा—बैठो बैठो, तुम्हें मेरे सिर की कसम। क्रुद्ध निताई अपना दुपट्टा जोर से खींचते-छुड़ाते हुए, "चूल्हे में जा, भाड़ में पड़, तेरा सत्यानास हो !" आदि शाप देते हुए तेजी से चल दिये।

सुन्दरी वहीं बैठकर थोड़ी देर तक खूब हँसती रही। फिर धीरे से उठकर सदर दरवाज़ा बंद करके धीरे-धीरे कहती रही—कहाँ वह और कहाँ यह ! ब्राह्मण इसको कहते हैं। इतने दुःख कष्ट में रहने पर भी मुँह पर हमेशा हर घड़ी हँसी झलकती रहती है, फिर भी उनकी ओर आँख उठाने की हिम्मत नहीं पड़ती—मानो आग जल रही हो।

९

ठीक कह नहीं सकते, किसकी कृपा से यह हुआ, लेकिन यह बात विकृत होकर बिराज के कानों तक पहुँचने को बाकी नहीं रही। उस दिन आलोचना करने आई थी उस घर की बुआ। विराज ने सब कुछ मन लगाकर सुना। फिर गम्भीर होकर कहा—उनका एक कान काट लेना उचित है बुआ !

बुआ बिगड़कर चल गई। कहती गई—जानती तो हूँ, इस जैसी वाचाल औरत गाँव में दूसरी नहीं है।

विराज ने स्वामी को बुलाकर कहा—तुम सुन्दरी के यहाँ फिर कब गये थे ?

नीलांबर ने भय से सूख कर जवाब दिया—बहुत दिन पहले पूँटी के हालचाल जानने के लिए गया था।

अब न जाना। सुनती हूँ, उसका चालचलन बहुत खराब हो गया है। इतना कहकर वह अपने काम से चली गई। इसके बाद कितने ही दिन बीत गये। सूर्यनारायण नित्य निकलते और अस्त होते हैं। उन्हें रोक रखने का

कोई उपाय न होने के कारण ही शायद शीत गया और गर्मी भी 'जाऊँ-जाऊँ' करने लगी। विराज के चेहरे पर एक गहरी छाया क्रमशः और गहरी होने लगी। अथ च दृष्टि क्लान्त और प्रखर हो गई। जो कोई उसकी ओर देखने जाता, उसी की आँखें जैसे आप ही झुक जातीं। शूल से वेधा गया लम्बा नाग शूल को ही लगातार डसकर, थककर, गिरकर जैसे देखता है, विराज की आँखों की दृष्टि भी वैसी ही करुण, अथच वैसी ही भयानक हो उठी है। स्वामी के साथ बातचीत लगभग होती ही नहीं। वह कब चोर की तरह आता-जाता है, उधर जैसे वह देखती ही नहीं। सभी उससे डरते हैं, केवल छोटी बहू नहीं डरती। वह मौक़ा मिलते ही जब-तब आकर उपद्रव किया करती है। पहले-पहले विराज ने उसके हाथ से छुटकारा पाने की बहुत चेष्टा की, लेकिन सफल नहीं हो सकी। आँखें लाल करने पर वह गले से लिपट जाती है; कड़ी बात कहने पर पैर पकड़ लेती है।

उस दिन दशहरा था। बहुत तड़के छोटी बहू छुपकर आई और बोली—अभी कोई उठा नहीं है, चलो न जीजी, ज़रा नदी में एक गोता लगा आवें।

उस पार जब से ज़मींदार का घाट तैयार हुआ, उसका नदी पर जाना बंद कर दिया गया था।

देवरानी जेठानी, दोनों स्नान करने गईं। स्नान करके जल से बाहर निकलते ही देखा, थोड़ी दूर पर एक पेड़ के नीचे ज़मींदार राजेन्द्रकुमार खड़ा है। उस जगह उस समय भी पूरी तरह से अन्धकार दूर नहीं हुआ था, तो भी दोनों ने उसे पहचान लिया। छोटी बहू भय से सिटपिटाकर सिमटकर विराज के पीछे आ खड़ी हुई। विराज को बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने सवेरे यह आदमी आया कैसे? किन्तु तुरत ही उसके मन में एक संभावना उठी कि शायद यह रोज़ इसी तरह पहरा दिया करता है! दो ही एक सेकिंड विराज दुविधा में रही, उसके बाद देवरानी का हाथ पकड़कर खींचकर बोली—खड़ी न रह छोटी बहू, चली आ।

उसे साथ लेकर तेज़ चाल से दरवाज़े तक पहुँचाकर विराज एकाएक कुछ सोचकर रुक गई। उसके बाद धीमी चाल से लौटकर राजेन्द्र से कुछ दूरी पर जाकर खड़ी हो गई। उसकी दोनों आँखें जल रही थीं। झुटपुटे

अस्पष्ट प्रकाश में भी राजेन्द्र उस दृष्टि को सह न सका। उसने सिर नीचा कर लिया।

बिराज ने कहा—आप भले आदमी के लड़के हैं, बड़े आदमी हैं। आपकी यह कैसी प्रवृत्ति है ?

राजेन्द्र हत्‌बुद्धि हो गया—कुछ जवाब न दे सका।

बिराज कहने लगी—आपकी ज़मींदारी चाहे जितनी बड़ी हो, आप जिस जगह पर खड़े हैं, वह मेरी है।—फिर उस पार का घाट हाथ से दिखाकर कहा—आप कितने अधम हैं, इस बात को इस घाटी की एक-एक लकड़ी जानती है, मैं भी जानती हूँ। जान पड़ता है, आपके कोई मा-बहन नहीं है। बहुत दिन पहले अपनी दासी के द्वारा मैंने यहाँ आने के लिए मना कर दिया था, वह आपने नहीं सुना ?

राजेन्द्र विस्मय से या भय से इतना अभिभूत हो गया था कि इतने पर भी कुछ बोल न सका।

बिराज ने कहा—आप मेरे स्वामी को नहीं जानते; जानते होते तो कभी न आते। इसी से आज कहे देती हूँ कि और कभी आने के पहले उनको जानने की चेष्टा कर देखिएगा। इतना कहकर बिराज धीरे-धीरे चली गई। वह घर के भीतर जा ही रही थी कि उसने देखा, पीतांबर एक गडुआ हाथ में लिये खड़ा है।

बहुत दिनों से उससे बोलचाल नहीं थी, तो भी उसने पुकारकर कहा—भाभी, जिससे तुम अभी बात कर रही थीं, वह वही ज़मींदार बाबू है न ?

पलक मारते ही बिराज का चेहरा और आँखें लाल हो गईं। वह 'हाँ' कहकर भीतर चली गई।

घर जाकर वह अपनी बात तो उसी दम भूल गई, लेकिन छोटी बहू के लिए मन-ही-मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठी। वह केवल यही सोचने लगी कि क्या जाने, उसे छोटे लल्ला ने देख पाया या नहीं। किन्तु अधिक देर तक सोचना नहीं पड़ा, लगभग दस मिनट के बाद उस घर से मार-पीट का शब्द और दबी रुलाई का आर्त्तस्वर सुन पड़ा।

बिराज दौड़कर चौके में चली गई और काठ-मूर्ति की तरह बैठ गई।

नीलांवर अभी-अभी नींद से जागकर वाहर आकर मुँह धो रहा था। पीतांवर के डाँटने गरजने का शव्द वह क्षणभर कान लगाकर सुनता रहा। उसके वाद ही झपटकर वेड़े के पास आया, लात मारकर उसे तोड़ डाला और उधर के घर में जा खड़ा हुआ।

वेड़ा टूटने के शव्द से चौंककर पीतांवर ने सिर उठाया कि सामने ही यमराज की तरह वड़े भाई को देखकर वह विवर्ण होकर रुक गया।

ज़मीन पर पड़ी हुई छोटी वहू को संबोधन करके नीलांवर ने कहा— भीतर जा वेटी, कोई डर नहीं है।

वहू काँपती हुई उठकर चली गई। तव नीलांवर ने सहज भाव से कहा—वहू के सामने तेरा अपमान नहीं करूँगा; लेकिन मेरी इस वात को भूलकर भी अवहेलना न करना कि जव तक मैं उस घर में हूँ तव तक यह सव नहीं हो सकेगा। तू उस पर जो हाथ उठावेगा, उसे ही तोड़ डालूँगा। इतना ही कहकर वह लौटा जा रहा था कि साहस वटोरकर पीतांवर कह उठा—घर पर चढ़कर मारने तो आ गये किन्तु कारण भी जानते हो?

नीलांवर घूमकर खड़ा हो गया। वोला—नहीं, जानना भी नहीं चाहता।

पीतांवर ने कहा—सो क्यों जानना चाहोगे? देख पड़ता है, तव तो मुझे विल्कुल घर छोड़कर ही भागना होगा!

नीलांवर उसका मुँह ताकता रहा, फिर वोला—घर छोड़कर किसे भागना पड़ेगा, यह मैं जानता हूँ; तुझे याद न कराना पड़ेगा। लेकिन यह मैं तुझे वतलाये जाता हूँ कि जव तक वह नहीं होता, तव तक तुझे सव्र करके रहना ही पड़ेगा।

इतना कहकर नीलांवर लौटने को हुआ कि पीतांवर सहसा सामने आकर खड़ा हो गया। वोला—तो फिर तुमको भी वतला देता हूँ दादा, कि दूसरे का शासन करने के पहले अपने घर का शासन करना अच्छा है।

नीलांवर ताकता रह गया। साहस पाकर पीतांवर कहने लगा—जानते तो हो कि उस पार का घाट किसका है? अच्छा। मैंने तभी से छोटी वहू को घाट पर जाने को मना कर दिया था। आज रात रहे उठकर वह भाभी

के साथ नहाने गई थी। कौन जाने, इसी तरह रोज़ जाती हो !

नीलांबर ने विस्मित होकर कहा—इसी अपराध पर तूने हाथ उठाया?

पीतांबर ने कहा—पहले सब सुन तो लो। वह ज़मींदार का लड़का—क्या जाने राजेन्द्र या क्या नाम है उसका—उसकी देश-विदेश में सुख्याति की सीमा नहीं है। आज भाभी उसी के साथ आध घंटे तक बातें करती रहीं, क्यों ?

नीलांबर कुछ समझ न पाकर कह उठा—कौन बातें करता रहा रे ? विराज ?

पीतांबर ने कहा—जी हाँ, वही।

तूने अपनी आंखों देखा है ?

पीतांबर ने मुँह पर हँसने का-सा भाव लाकर कहा—मैं जानता हूँ कि तुम मुझे देख नहीं सकते—मेरा वह न्याय भगवान् करेंगे—लेकिन··

नीलांबर ने डाँटकर कहा—फिर भगवान् का नाम मुँह पर लाता है ! क्या कहेगा सो कह।

पीतांबर चौंक उठा। कुछ रुककर रुष्ट स्वर में कहने लगा—आँख से देखे बिना बात कहना मेरा स्वभाव नहीं है। कहता हूँ, अगर घर में शासन न कर सको तो दूसरे को मारने के लिए न चढ़ दौड़ा करो।

नीलांबर के सिर पर जैसे अकस्मात् लाठी की चोट पड़ गई। क्षणभर उद्‌भ्रान्त विमूढ़ दृष्टि से ताकते रहकर उसने अन्त में पूछा—आध घंटे तक कौन बातें करता रहा, विराज बहू ? तूने अपनी आँख से देखा है ?

पीतांबर दो-एक पग पीछे लौट चुका था, खड़ा होकर बोला—हाँ, आँख से देखा है—आध घंटे से शायद अधिक ही होगा।

फिर नीलांबर कुछ देर तक चुपचाप ताकता रहकर बोला—अच्छा, अगर यही हुआ तो यह कैसे जाना कि बात करना आवश्यक न था ?

पीतांबर मुँह फेरकर हँसकर बोला—यह तो नहीं जानता; लेकिन मेरा भी मार-पीट करना उचित नहीं हुआ; क्योंकि वह घाट छोटी बहू के लिए नहीं बनाया गया है !

क्षणभर की उत्तेजना से नीलांबर दोनों हाथ उठाकर दौड़ा परन्तु सहसा रुक गया। पीतांबर के मुँह की ओर देखता हुआ बोला—तू एक जानवर है,

और फिर छोटा भाई ठहरा। बड़ा भाई होकर मैं तुझको शाप नहीं दूँगा। क्षमा करता हूँ। मगर आज तूने अपने गुरुजन के लिए जो कहा उसके लिए भगवान् तुझे क्षमा नहीं करेंगे—जा। यों कहकर वह धीरे से अपने घर की तरफ़ आकर टूटे हुए बेड़े को खुद अपने हाथ से बाँधने लगा।

विराज ने कान लगाकर सब सुना। लज्जा और घृणा से वह सिर से पैर तक बार-बार काँप उठी। एक बार विचार किया कि सामने जाकर अपनी सब बात कह दे, किन्तु उसके पैर नहीं उठे। पति के सामने वह यह बात कैसे अपने मुँह से उच्चारण करे कि उसके रूप पर एक पर-पुरुष की लुब्ध दृष्टि पड़ी है!

बेड़ा बाँधकर नीलांबर बाहर चला गया।

दोपहर को थाली परोसकर बिराज आड़ में बैठी रही, रात को पति के सो जाने पर चुपके से आकर बिछौने पर पड़ रही और सवेरे उसकी नींद खुलने के पहले ही बाहर निकल गई।

इसी तरह भागते रहते जब दो दिन बीत गये और नीलांबर ने कुछ नहीं पूछा, तब और एक तरह की शंका उसके मन के भीतर धीरे-धीरे सिर उठाने लगी। स्त्री के सम्बन्ध में इतनी बड़ी बदनामी की बात में पति के मन में कोई कौतूहल न उत्पन्न होने का कोई संगत कारण उसे ढूँढ़े नहीं मिला। अथवा इस घटना से वह विस्मित हुआ है, यह संभावना भी विराज को सान्त्वना नहीं दे सकी। एक तरफ़ इन दो दिनों को उसने जैसे लुक-छिपकर बिताया है, वैसे ही दूसरी तरफ हर घड़ी उसे यह आशा लगी रही कि अब बात उठेगी, अब वे बुलाकर घटना जानना चाहेंगे। तब वह आदि से अन्त तक सब हाल कहकर, स्वामी के चरणों के नीचे अपने हृदय का सारा बोझ उतारकर स्वस्थ होगी, उसकी यह बेचैनी दूर हो जायेगी। किन्तु कहाँ, यह कुछ भी तो नहीं हुआ। नीलांबर चुप ही रहा।

एक बार विराज ने यह भी सोचने की चेष्टा की कि संभव है, स्वामी ने इस पर विश्वास ही नहीं किया। लेकिन फिर उसने सोचा कि उसका इस तरह संपूर्ण रूप से अपने को छिपाना क्या पति के मन में संदेह नहीं उत्पन्न कर रहा है? पर जिस बात को वह आप इतने दिन तक छिपाती आई है, उसे अब आप ही जाकर कैसे कहे? वह दिन भी इस तरह बीत गया। दूसरे

दिन सवेरे विराज भयपीड़ित व्याकुल हृदय से घर का काम-धंधा कर रही थी। सहसा उसके हृदय के गहरे अन्तस्तल को मथकर घूर्णावर्त्त की तरह यह भयंकर बात बाहर निकल आई कि और अगर उन्होंने छोटे लल्ला की बात पर विश्वास ही कर लिया हो, तो ?

नीलांवर पूजा-पाठ समाप्त करके उठने वाला ही था कि विराज आँधी की तरह उसके सामने जाकर हाँफने लगी।

विस्मित नीलांवर के सिर उठाते ही विराज जोर से होठ से होंठ दबाकर कह उठी—वताओ, मैंने क्या किया है ? मुझसे वोलते क्यों नहीं ?

नीलांवर हँस दिया। वोला—तुम तो भागती फिरती हो, वात किससे करूँ ?

भागती फिरती हूँ ! तुम क्या एक वार पुकार नहीं सकते थे ?

नीलांवर ने कहा—जो आदमी भागता फिरे उसे पुकारने से पाप होता है।

पाप होता है ? तो यों कहो कि तुमने छोटे लल्ला की वात पर विश्वास कर लिया ?

सच वात है, विश्वास न करूँगा ?

विराज क्रोध और दुःख से रो दी ! आँसुओं से विकृत गले से चिल्लाकर बोली—सच नहीं, घोर झूठ है ! तुमने क्यों विश्वास किया ?

तुमने नदी के किनारे वात नहीं की थी ?

विराज ने उद्दण्ड भाव से उत्तर दिया—हाँ, की थी।

नीलांवर ने कहा—तो मैंने इतना ही विश्वास भी किया है।

विराज ने हथेली से आँखें पोंछते हुए कहा—अगर विश्वास ही किया है तो फिर उसी नीच की तरह मुझे दण्ड क्यों नहीं दिया ?

नीलांवर फिर हँसा। ताज़े खिले फूल की-सी उज्ज्वल निर्मल हँसी से उसका मुखमण्डल उद्भासित हो उठा। दाहिना हाथ उठाकर कहा—अच्छा तो पास आओ, वचपन की तरह और एकवार कान मल दूँ।

पल भर में ही विराज सामने जाकर, घुटनों के वल बैठ गई और तुरन्त ही उसकी छाती पर जोर से गिरकर दोनों हाथ गले में डालकर फूट-फूटकर रोने लगी।

नीलांबर ने रोने से नहीं रोका। उसकी भी दोनों आँखों में आँसू भर आये। वह पत्नी के सिर पर चुपचाप दाहिना हाथ रखकर मन-ही-मन आशीर्वाद देने लगा। कुछ देर में जब रुलाई का जोर कम हो गया, तब विराज ने सिर उठाये बिना ही कहा—उससे मैंने क्या कहा था, जानते हो ?

नीलांबर ने स्नेहपूर्वक मृदु स्वर से कहा—जानता हूँ, उसे आने से रोक दिया है।

तुम से किसने कहा ?

नीलांबर ने हँसकर कहा—कहा किसी ने नहीं। लेकिन एक अपरिचित आदमी से बात की है, तो बड़े दुःख में पड़कर ही की है, यह मैं जानता हूँ। तब वह बात इसके सिवा और क्या हो सकती है ?

विराज की आँखों से फिर आँसू पड़ने लगे।

नीलांबर कहने लगा—लेकिन काम अच्छा नहीं किया। मुझे बताना चाहिए था, मैं ही जाकर उसे समझा देता। मुझे बहुत दिन पहले ही उसके मन का भाव मालूम हो गया था—कितने ही दिन सवेरे और शाम उसे देख भी लिया है, लेकिन तुम ने मना कर दिया था, उसी का खयाल करके किसी दिन कुछ नहीं कहा।

उस दिन शाम से ही आकाश में बादल छाए थे और बूँदाबाँदी हो रही थी। रात को पति-पत्नी में फिर चर्चा चली।

नीलांबर ने कहा—आज दिन-भर मैं उसकी प्रतीक्षा में ही रहा।

विराज डरकर कह उठी—क्यों ? —किसलिए ?

दो बातें न कहने से भगवान् के सामने अपराधी होना पड़ेगा—इसलिए।

भय और उत्तेजना के मारे विराज उठ बैठी। बोली—ना, यह न होगा, किसी तरह न होगा। इसे लेकर तुम उससे एक शब्द भी न कह सकोगे।

उसके मुख और आंखों के भाव को लक्ष्य करके नीलांबर अत्यन्त विस्मित होकर बोला—मैं तुम्हारा पति हूँ, मेरा क्या यह कर्त्तव्य नहीं है ?

बिना सोचे-विचारे ही विराज कह उठी—पहले पति के और कर्त्तव्य करो, उसके बाद यह कर्त्तव्य करने जाना।

'क्या ?' कहकर नीलांबर क्षणभर स्तंभित-सा हो रहा। अन्त को धीरे से 'अच्छा' कहकर, एक साँस छोड़कर, करवट बदलकर चुप हो रहा।

विराज उसी तरह पड़ी-पड़ी स्थिर होकर सोचने लगी कि आज यह कैसी बात सहसा मेरे मुँह से निकल गई !

बाहर वर्षा की पहली बूंदों के गिरने का धीमा शब्द होने लगा और खुली हुई खिड़की से भीगी मिट्टी की सोंधी सोहावनी गंध भीतर आने लगी। भीतर पति-पत्नी दोनों प्राणी चुपचाप स्तब्ध होकर पड़े रहे।

बहुत देर बाद नीलांबर गहरे आर्त-स्वर में—जैसे अपने मन में ही कह रहा हो—कह उठा—मैं कितना निकम्मा और अपदार्थ हूँ विराज, यह जैसा तेरे पास सीखा वैसा और किसी के पास नहीं।

विराज ने कुछ कहना चाहा, लेकिन उसके गले से बोल ही नहीं फूटा। बहुत दिनों के बाद आज इस असह्य दुःख-दैन्य-पीड़ित दम्पति के बीच सन्धि का सूत्रपात होते ही वह फिर छिन्न-भिन्न हो गया।

१०

दोपहर के समय कहीं किसी को न देखकर छोटी बहू रोती हुई आई और विराज के पैरों पर गिर पड़ी। स्वामी ने जो अपराध किया था, उसके भय से व्याकुल होकर इधर दो दिनों से वह इसी सुयोग की ताक में थी। रोकर बोली—उन्हें शाप न देना जीजी, मेरे मुँह की ओर देखकर उन्हें क्षमा कर दो। उन्हें कुछ हो गया तो मैं जियूँगी नहीं।

हाथ पकड़कर उसे उठाते हुए, विषादपूर्ण गंभीर स्वर में विराज ने कहा—मैं शाप न दूँगी बहन। मेरा कुछ विगाड़ने की उनमें ताकत भी नहीं है। लेकिन तुम जैसी सती-लक्ष्मी की देह पर विना किसी अपराध के हाथ चलाना दुर्गा मैया तो नहीं सहन करेंगी !

मोहिनी काँप उठी। आँसू पोंछती हुई बोली—क्या करूँ जीजी, उनका स्वभाव ही ऐसा है। जिन देवता ने उनको इतना क्रोधी बनाया है, वही क्षमा करेंगे। फिर भी कोई ऐसा देवी-देवता नहीं बचा, जिसकी मैंने मानता न मानी हो। पर मैं बड़ी पापिन हूँ, किसी ने मेरी पुकार नहीं सुनी। एक भी

दिन ऐसा नहीं वीतता जीजी—कहते-कहते वह हठात् रुक गई।

अभी तक बिराज ने लक्ष्य नहीं किया था कि छोटी वहू की दाहिनी कनपटी पर एक तिरछा गहरा काला दाग पड़ा है। सहमकर कह उठी—तेरे माथे पर क्या यह मार का निशान है ?

छोटी वहू ने लज्जित मुख नीचा करके गरदन हिलाई।

विराज ने पूछा—काहे से मारा था ?

स्वामी की लज्जा के मारे छोटी बहू सिर नहीं उठा पाती थी। उसने सिर झुकाये हुए ही धीरे-से कहा—क्रोध आने पर उनको ज्ञान नहीं रहता जीजी।

सो तो मैं जानती हूँ। लेकिन मारा किस चीज से ?

मोहिनी वैसे ही सिर झुकाये वोली—पैरों में चट्टी थी—

विराज स्तव्ध हो रही, उसकी आँखों से आग निकलने लगी। कुछ देर के वाद दवे हुए विकृत कण्ठ से वोली—कैसे सह लिया तूने छोटी वहू ?

छोटी बहू सिर कुछ ऊपर करके वोली—मुझे अभ्यास हो गया है जीजी।

विराज ने जैसे उसकी बात कान से सुनी ही नहीं। विकृत कंठ से कहा—और उसी के लिए तू क्षमा करने को कहने आई है ?

जिठानी के मुँह की ओर देखकर छोटी वहू ने कहा—हाँ जीजी, तुम प्रसन्न न होओगी तो उनका अनिष्ट होगा, और सहने की जो बात कहती हो जीजी, सो तो तुम्हीं से सीखा है। मेरा जो कुछ है सो सब तुम्हारे ही चरणों की···

अधीर होकर विराज कह उठी—नहीं छोटी वहू, नहीं। झूठी वात न कह। ऐसा अपमान मैं नहीं सह सकती।

मोहिनी ने जरा हँसकर कहा—अपना अपमान सह लेना ही क्या बहुत अधिक सहना है जीजी ? तुम्हारा जैसा स्वामी-सौभाग्य संसार में सव नारियों को नसीब नहीं होता, फिर भी तुम जो सह रही हो उसे सहना पड़ता तो हमारा चूरा हो जाता। उनके मुँह की हँसी गायब हो गई है, मन में सुख नहीं है—यह सब तुम को रात-दिन आँख से देखना पड़ता है। ऐसे स्वामी का इतना कष्ट तुम्हारे सिवा दूसरी स्त्री नहीं सह सकती जीजी !

विराज चुप हो रही ।

छोटी वहू ने दोनों हाथों से जल्दी से उसके पैर पकड़ लिये और कहा—वताओ जीजी, उन्हें क्षमा कर दिया ? तुम्हारे मुँह से सुने विना मैं किसी तरह नहीं छोड़ूँगी । तुम जो प्रसन्न न होगी तो उन्हें कोई भी नहीं वचा सकेगा जीजी !

विराज ने पैर हटा लिये और हाथ से छोटी वहू की ठोड़ी पकड़कर कहा—क्षमा किया ।

एक बार फिर विराज की चरण रज माथे से लगाकर प्रसन्न मुख छोटी बहू चली गई ।

किन्तु विराज अभिभूत की तरह उसी जगह वहुत देर तक स्तब्ध होकर वैठी रही । उसके हृदय के अन्तस्तल से कोई जैसे वार-वार पुकार-कर कहने लगा—यह देखकर सीख विराज !

तव से वहुत दिन तक छोटी वहू इस घर में नहीं आई, किन्तु अपनी एक आँख और एक कान उसने इधर ही लगा रक्खा था । आज एक वजे के समय उसने बड़ी सावधानी से इधर-उधर देखकर इस घर में प्रवेश किया ।

बिराज गाल पर हाथ रक्खे रसोईघर के वरंडे के एक किनारे स्तब्ध होकर जैसी वैठी थी वैसी ही वैठी रही ।

छोटी वहू ने पास वैठकर विराज के पैर छूकर धीरे-से कहा—जीजी, क्या पागल हुई जा रही हो ?

बिराज ने मुँह फिराकर तीव्र स्वर में उत्तर दिया—तू न होती ?

छोटी वहू ने कहा—अपने साथ तुलना करके मुझको अपराधी न बनाओ जीजी । मैं तो तुम्हारे इन दोनों पैरों की धूल के योग्य भी नहीं हूँ । लेकिन तुम बताओ, क्यों ऐसी हो रही हो ? जेठजी को आज तुम ने खाने क्यों नहीं दिया ?

बिराज ने कहा—मैंने तो खाने को मना नहीं किया !

छोटी वहू ने कहा—मना नहीं किया, यह ठीक है, लेकिन एक बार पास क्यों नहीं गईं ? खाने के लिए वैठकर उन्होंने कितनी बार पुकारा, एक वार जवाब तक नहीं दिया । अच्छा, तुम्हीं कहो, इससे दुःख होता है कि नहीं ? एक बार अगर पास चली जातीं तो वह थाली छोड़कर न उठ

जाते।

तो भी विराज चुप रही।

छोटी बहू कहने लगी—'हाथ फँसे थे' कहकर मुझे बहला न सकोगी जीजी। तुमने हमेशा सब काम-काज छोड़कर उन्हें सामने बिठाकर भोजन कराया है,—संसार में इससे बड़ा काम तुम्हारे लिए और कोई कभी नहीं रहा। आज···

बात पूरी होने के पहले ही विराज ने पागल की तरह उसका एक हाथ पकड़कर जोर से खींचते हुए कहा—तो फिर चलकर देख, इतना कहकर उसे खींच लाकर रसोईघर के बीच खड़ा कर दिया और हाथ से थाली दिखाकर कहा—यह देख!

छोटी बहू ने ध्यान से देखा, एक काले पत्थर के पात्र में बिना साफ किये मोटे चावल का भात और उसी के पास पकाया हुआ करेमुआ का साग रक्खा था। और कुछ भी न था। आज और कोई उपाय न देखकर विराज ने इसे नदी के किनारे से तोड़ कर पका दिया था।

देखते-देखते छोटी बहू की आँखों से झर-झर करके आँसू गिरने लगे; किन्तु विराज की आँखों में जल का आभास तक न था। दोनों बहुएँ—देवरानी जिठानी—चुपचाप एक-दूसरे का मुँह ताकती रहीं।

विराज ने अविकृत सहज स्वर में कहा—तू भी तो एक स्त्री है, तुझे भी तो पकाकर स्वामी के आगे थाली रखनी पड़ती है। तू ही बता, दुनिया में क्या कोई स्त्री सामने बैठकर स्वामी का ऐसा भोजन करना देख सकती है? पहले यह बता, फिर तेरे मुँह में जो आवे वही कहकर मुझे गाली दे—मैं कुछ न बोलूंगी।

छोटी बहू एक बात भी न कह सकी, उसकी आँखों से उसी तरह लगातार जल झरने लगा।

विराज कहने लगी—दैव-संयोग से अगर किसी दिन रसोई में कोई दोष होने से उन्होंने एक कौर भी कम खाया है तो सारे दिन मेरे हृदय के भीतर कैसी सुइयाँ चुभती रही हैं, यह कोई और नहीं जानता, तू जानती है छोटी बहू। और आज उनकी भूख के समय यह जो लाकर देना पड़ता है—सो यह भी शायद अब नहीं मिल सकेगा। आगे वह सहन न कर सकी,

देवरानी की छाती पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी और दोनों हाथों से उसके गले से लिपट कर जोर से रो उठी। इसके बाद सगी बहनों की तरह दोनों जनी बहुत देर तक एक दूसरे के कंठ से लिपटी रहीं। बड़ी देर तक वे दोनों अभिन्न नारी-हृदय चुपचाप आँसुओं से भीगते रहे। इसके बाद विराज ने सिर उठाकर कहा—नहीं, मैं तुझ से छिपाऊँगी नहीं, क्योंकि मेरा दुःख समझने वाला तेरे सिवा और कोई नहीं है। मैंने बहुत सोच-विचारकर देखा है कि मेरे यहाँ से हटे बिना उनका यह कष्ट दूर न होगा। लेकिन रहने से तो वह मुख देखे बिना एक दिन भी न बिता सकूँगी। मैं जाऊँगी, बता, मेरे जाने पर तू उन्हें देखेगी ?

छोटी बहू ने आँख उठाकर पूछा—कहाँ जाओगी ?

विराज के सूखे होठों पर एक कठिन बुझी हुई ठंडी हँसी की रेखा खिंच गई। जान पड़ता है, एक बार उसके मन में दुविधा भी आई; वह हिचकी भी। उसके बाद बोली—यह कैसे जानूँगी बहन कि कहाँ जाना होता है। सुनती हूँ, उससे बढ़कर पाप शायद और नहीं है। सो वह चाहे जो हो, यह दिन-रात की कुढ़न तो मिट जायगी।

अब की बार मतलब समझकर मोहिनी काँप उठी और व्यस्त होकर उसके मुँह पर हाथ रखकर कह उठी—छी छी, यह बात मुँह पर भी न लाना जीजी, आत्महत्या की बात जो कहता है, उसे पाप होता है और जो कानों से सुनता है, उसे भी पाप लगता है। छी छी, यह क्या हो गई हो तुम जीजी !

विराज ने हाथ हटाकर कहा—सो नहीं जानती। केवल यह जानती हूँ कि उन्हें अब मैं खाने को नहीं दे सकती। आज मुझे छूकर यह वचन दे कि जिस तरह होगा, तू दोनों भाइयों में मेल करा देगी !

"वचन देती हूँ" कहकर मोहिनी ने सहसा बैठकर विराज के दोनों पैर भर ज़ोर पकड़कर कहा—तो मुझे भी आज एक भिक्षा दोगी, बोलो ?

बिराज ने पूछा—क्या ?

छोटी बहू ने कहा—तो एक मिनट ठहरो, मैं आती हूँ।

इतना कहकर उसके जाने को पैर बढ़ाते ही विराज ने उसका आँचल पकड़ लिया और कहा—नहीं, जा नहीं। मैं एक तिल तक किसी से नहीं

लूँगी।

छोटी वहू ने कहा—क्यों न लोगी ?

बिराज बड़े ज़ोर से सिर हिलाकर बोली—ना, यह किसी तरह न होगा। मैं किसी का भी कुछ न ले सकूँगी।

छोटी वहू ने क्षण-भर स्थिर दृष्टि से जिठानी की इस आकस्मिक उत्तेजना को लक्ष्य किया, उसके वाद वहीं वैठ गई और उसे ज़ोर से खींच-कर पास विठाकर कहा—तो सुनो जीजी ! मालूम नहीं क्यों, पहले तुम मुझे प्यार नहीं करती थीं, अच्छी तरह वात भी नहीं करती थी। इसके लिए मैं छिपकर अकेले में कितना रोई हूँ, कितने देवी-देवताओं को पुकारा है, इसकी कोई गिनती नहीं आज उन्होंने भी मुँह उठाकर देखा है और तुमने भी छोटी वहन कहकर पुकारा है। अव ज़रा सोचकर देखो, अगर मुझे इस हालत में देखकर कुछ न कर पातीं, तो तुम किस तरह व्याकुल होती फिरतीं ?

विराज जवाव न दे सकी, सिर झुका कर रह गई।

छोटी वहू उठकर चली गई और जल्दी ही एक वड़ी टोकरी को सव तरह की खाने की सामग्री से भरकर लाई और सामने रख दी।

विराज स्थिर होकर देख रही थी। किन्तु छोटी वहू जव पास आकर उसके आँचल का एक छोर उठाकर उसमें एक सोने की मोहर वाँधने लगी तब उससे नहीं रह गया। उसे ज़ोर से पीछे ठेलकर चिल्ला उठी—ना, यह किसी तरह नहीं होगा—मर जाने पर भी नहीं।

मोहिनी उस धक्के को सँभालकर सिर उठाकर वोली—होगा क्यों नहीं, निश्चय होगा। यह मेरे जेठ जी ने मुझे व्याह के समय दी थी।

इतना कहकर आँचल में वाँधकर, झुककर और एक वार जिठानी की चरण-रज माथे से लगाकर, वह घर चली गई।

११

मगरा का इतने दिन का पीतल के कब्जों का कारखाना एक दिन एकाएक बंद हो गया और चांडाल जाति की वही लड़की यह खबर बिराज

को देने आई। साँचों की बिक्री बंद होने से वह अपनी तरह-तरह की क्षतियों और असुविधाओं का ब्योरा लगातार बकने लगी। विराज ने चुप रहकर सब सुना। उसके बाद वह केवल एक छोटी-सी साँस छोड़कर रह गई। लड़की ने समझा, उसके दुःख का हिस्सा बँटाने वाला उसे नहीं मिला, इससे वह कुंठित होकर चली गई। हाय रे अबोध दुखिया की लड़की ! तू कैसे समझेगी कि उस छोटी-सी साँस में क्या था, उस मौन की आड़ में कैसा तूफान उठ रहा था ? शान्त मौन पृथ्वी के अन्तस्तल में कैसी आग धधकती है, यह समझने की क्षमता तू कहाँ पावेगी ?

नीलांबर ने आकर कहा—उसे काम मिल गया है। आने वाली दुर्गा पूजा से ही कलकत्ते के एक नामी कीर्त्तन-दल में वह तबला बजावेगा।

खबर सुनकर विराज का चेहरा मुर्दे जैसा रक्त-हीन हो गया। उसका स्वामी गणिका के अधीन होकर, गणिका के साथ, सब भले आदमियों के सामने गाता-बजाता फिरेगा, तब आहार जुटेगा ! लज्जा और धिक्कार से वह जैसे धरती में समा जाने लगी, लेकिन मुँह फोड़कर मना भी नहीं कर सकी। और कोई उपाय जो न था ! सन्ध्या के अन्धकार में नीलांबर उसके मुख का भाव नहीं देख पाया—अच्छा ही हुआ।

भाटे के खिंचाव में पानी जैसे घड़ी-घड़ी अपने क्षय के चिह्न को तट-प्रान्त में अंकित करते-करते दूर-से-दूर हटता चला जाता है, ठीक उसी तरह विराज का शरीर सूखने लगा। बहुत तेज़ी के साथ अत्यन्त सुस्पष्ट रूप से ठीक उसी तरह उसके शरीर-तट की सारी मलिनता को निरन्तर अनावृत करती हुई उसके देववांछित अनुपम यौवन की शोभा न जाने कहाँ गायब हो जाने लगी। देह सूख गई, मुख मुरझा गया और दृष्टि अस्वाभाविक हो उठी—जैसे वह कोई डरावनी चीज़ निरन्तर देख रही है। अथ च उसे देखने वाला कोई नहीं। थी केवल छोटी बहू। एक महीने से अधिक हुआ, वह भी भाई के बीमार पड़ जाने के कारण मायके गई है। नीलांबर दिन की वेला प्रायः ही नहीं रहता। जब आता है, तब रात का अंधकार छा जाता है। दोनों आँखें अक्सर लाल रहती हैं। साँस गरम चलती है। विराज सब-कुछ देख पाती है, सब-कुछ समझ लेती है, लेकिन कुछ भी नहीं कहती। कहने को जी भी नहीं चाहता, अब साधारण बोल-चाल करने में भी उसे

क्लान्ति मालूम होती है ।

कई दिन से इधर तीसरे पहर से जाड़ा लगकर सिर में दर्द होने लगता है । इसी हालत में उसे टिमटिमाता हुआ सन्ध्या का दीपक हाथ में लेकर रसोईघर में प्रवेश करना पड़ता है । स्वामी घर में रहते नहीं, इसलिए अब वह दिन को प्राय: भोजन नहीं बनाती, रात को बनाती है; परन्तु उस समय उसे बुखार रहता है । स्वामी का खाना-पीना हो जाने पर हाथ-पैर धोकर वह पड़ रहती है । इसी तरह उसके दिन बीत रहे हैं । आजकल बिराज अपने ठाकुर देवता से मुँह उठाकर देखने के लिए नहीं कहती और पहले की तरह प्रार्थना भी नहीं करती । नित्य की पूजा समाप्त करके गले में आँचल डालकर जब प्रणाम करती है, तब मन-ही-मन केवल यही कहती है कि भगवान्, जिस राह में जा रही हूँ, उसी राह में जरा जल्दी जा सकूँ ।

उस दिन सावन की संक्रान्ति थी । सवेरे से ही ज़ोर की वर्षा रुकने का नाम नहीं लेती थी । तीन दिन ज्वर भोगने के बाद बिराज भूख-प्यास से व्याकुल होकर संध्या के उपरान्त बिछौने पर उठकर बैठ गई । नीलांबर घर में न था । स्त्री के इतना ज्वर रहने पर भी, परसों, उसे श्रीरामपुर के एक धनाढ्य शिष्य के यहाँ कुछ प्राप्ति की आशा से जाना पड़ा था । किन्तु कह गया था कि किसी तरह रात को वहाँ नहीं रहूँगा, जिस तरह भी हो, उसी दिन संध्या तक लौट आऊँगा । परसों बीता, कल गया, आज का दिन भी बीत चला, मगर उसके दर्शन नहीं हुए । कई दिनों के बाद आज बिराज दिन में कई बार रोई है । जब किसी तरह लेटे नहीं रहा गया, तब संध्या का दीपक जलाकर, एक तौलिया सिर पर डालकर काँपते-काँपते बाहर रास्ते के किनारे आकर खड़ी हो गई । वर्षा के अन्धकार के बीच जहाँ तक नज़र गई, उसने ध्यान से देखा, लेकिन कहीं कुछ न देख पाकर लौट आई । भीगे कपड़े और भीगे बालों से चण्डी-मण्डप की सीढ़ी का सहारा लेकर वह बैठ गई और इतनी देर बाद फिर रोने लगी । क्या जाने, उनको क्या हुआ ! एक तो दुःख, कष्ट और अनाहार से उनकी देह दुर्बल हो रही है, उस पर यह परिश्रम ! कहीं बीमार तो नहीं पड़ गये ! कहीं किसी घोड़ा-गाड़ी के नीचे तो नहीं आ गये ! क्या हुआ, क्या सर्वनाश घटित हो गया—घर में बैठे-बैठे वह कैसे कहे ! किस तरह, क्या उपाय करे ! और एक

विपत्ति यह है कि पीतांबर भी घर नहीं है। कल तीसरे पहर वह छोटी बहू को लेने गया है। सारे घर में विराज एकदम अकेली है और स्वयं भी अस्वस्थ है। आज दोपहर से बुखार ज़रूर उतर गया है, मगर घर में ऐसी ज़रा-सी भी कोई चीज़ न थी, जिसे वह खाती। दो दिन से उसने खाली पानी पिया है। पानी में भीगने के कारण उसे जाड़ा मालूम पड़ने लगा, सिर में चक्कर आने लगा। वह किसी तरह हाथों और पैरों को ज़ोर देकर सीढ़ी छोड़कर उठ खड़ी हुई और चण्डी-मण्डप के भीतर जाकर ज़मीन पर ही पेट के बल पड़कर सिर पटकने लगी।

सदर दरवाजे पर किसी ने धक्का दिया। विराज ने एक बार कान लगाकर सुना। दूसरा धक्का पड़ने के साथ-ही-साथ 'आती हूँ' कहकर पल-भर में ही दौड़कर उसने किवाड़े खोल दिये! अथ च, घड़ी-भर पहले वह उठकर बैठने में भी असमर्थ थी।

किवाड़ों में जो धक्का दे रहा था, वह उस मोहल्ले के किसान का लड़का था। उसने कहा—माँजी, दादा ठाकुर ने एक सूखी धोती माँगी है, दे दो।

विराज अच्छी तरह समझ नहीं पाई। चौखट का सहारा लेकर कई सैकण्ड तक ताकते रहने के बाद बोली—धोती माँगते हैं? कहाँ हैं वह?

लड़के ने जवाब दिया—गोपाल महाराज के बाप की गति करके अभी सब लोग लौटे हैं।

गति करके? विराज स्तंभित हो रही। गोपाल चक्रवर्ती इन लोगों के एक दूर के नाते का आत्मीय था। उसके वृद्ध पिता बहुत दिनों से बीमार थे। दो दिन पहले त्रिवेणी[1] में गंगा[2]-यात्रा कराई गई थी। आज

---

१ हुगली जिले का त्रिवेणी नामक ग्राम।

२ बंगाल में जब रोगी के बचने की कोई आशा नहीं रह जाती है या ऊर्ध्वश्वास चलने लगती है, तब उसे खटिया समेत गंगा या किसी नदी के किनारे ले जाकर अधजल में रख देते हैं और सब 'हरि-बोल, हरि-बोल' का उच्चारण करते हैं। इसी को गंगा यात्रा कहते हैं।

—अनुवादक

दोपहर को उनकी मृत्यु हो गई। दाह करके अभी सब लोग लौटे हैं। लड़के ने सब ख़बर देकर अन्त में बतलाया कि इधर आस-पास दादा ठाकुर के बराबर किसी को नाड़ी की परख नहीं है, इसी से वह भी उसी दिन से साथ थे।

विराज लड़खड़ाती हुई भीतर आई और एक धोती देकर बिस्तर पर पड़ रही।

जन-प्राणी से शून्य अँधेरे घर के भीतर उसकी स्त्री अकेली है; बुखार, दुश्चिन्ता और अनाहार से मुर्दा हो रही है—यह सब जान-बूझकर भी जिसका स्वामी बाहर परोपकार करने में लगा है, उस अभागिन को कहने-सुनने के लिए और क्या बाकी रहता है ? आज उसका शिथिल विकृत मस्तिष्क बार-बार ज़ोर देकर कहने लगा—विराज, संसार में तेरा कोई नहीं है। तेरे मा नहीं है, बाप नहीं है, भाई नहीं है, बहन नहीं है—स्वामी भी नहीं है। हैं केवल यमराज। उनके पास जाने के सिवा तेरी ज्वाला शान्त होने का कोई दूहरा स्थान नही है। बाहर वर्षा के शब्द में, झींगुरों की झंकार में, हवा की सनसनाहट में यही 'नही है, नहीं है' का शब्द निकलकर उसके दोनों कानों के भीतर गूंजने लगा। भंडारे में चावल नहीं, कोठार में धान नहीं, बाग में फल नहीं, पोखर में मछली नहीं—सुख नहीं, शान्ति नहीं, स्वास्थ नहीं, घर में छोटी बहू नहीं। सबके साथ आज उसका स्वामी भी नहीं। अथ च, आश्चर्य यह है कि आज किसी के खिलाफ विशेष कोई क्षोभ-भाव भी उसके मन में नहीं उठा। एक साल पहले स्वामी की इस हृदयहीनता के सौ हिस्से का एक हिस्सा भी जान पड़ता है, उसे क्रोध से पागल बना देता; किन्तु आज न जाने कैसा एक तरह का स्तब्ध अवसाद उसे अनुभूतिशून्य बना देने लगा।

ऐसे ही निर्जीव की तरह पड़े रहकर उसने न जाने क्या-क्या सोचकर देखना चाहा, सोचने भी लगी, किन्तु उसका सभी सोचना असम्बद्ध था। अथ च, उसी बीच अभ्यासवश सहसा याद आ गया कि सारे दिन उन्होंने कुछ खाया-पिया नहीं।

फिर उससे लेटे नहीं रहा गया। जल्दी से बिछोना छोड़कर, दीपक हाथ में लेकर वह भंडारे में गई और बारीकी से खोजने लगी कि राँधने

के लायक कुछ निकल आवे। किन्तु कुछ भी न था। अन्न का एक कण भी उसे न देख पड़ा। वह वाहर आकर खूँटी के सहारे कुछ देर खड़ी होकर सोचती रही। इसके वाद फूँक मारकर हाथ का दीपक वुझाकर रख दिया और खिड़की खोलकर वाहर निकल गई। कैसा घोर अंधकार था! किन्तु वह भीषण सन्नाटा, घनी झाड़ियों-काँटों से भरी फिसल पड़ने लायक वह तंग राह, कुछ भी उसकी गति को नहीं रोक सका। वाग़ के दूसरे छोर पर वन के भीतर चांडालों की छोटी-छोटी झोंपड़ियाँ थीं। विराज उसी ओर गई। वाहर कोई दीवार नहीं थी। विराज ने एकदम आँगन में खड़े होकर पुकारा—तुलसी!

पुकार सुनकर तुलसी रोशनी हाथ में लिए बाहर आकर विस्मय से अवाक् हो गया।

इस अँधेरे में तुम कैसे आईं माजी?

विराज ने कहा—थोड़े से चावल दे।

'चावल दूँ?' कहकर तुलसी हतवुद्धि हो रहा। इस अद्भुत प्रार्थना का कोई अर्थ उसे खोजे नहीं मिला।

विराज ने उसके मुँह की ओर देखकर कहा—खड़ा न रह तुलसी, ज़रा जल्दी लाकर दे।

तुलसी ने और भी एक-दो प्रश्न करने के बाद चावल लाकर विराज के आँचल में बाँध दिये और कहा—लेकिन इन मोटे चावलों से क्या काम चलेगा माजी? यह तो तुम लोग खा न सकोगे।

विराज ने सिर हिलाकर कहा—खा सकेंगे।

इसके वाद तुलसी ने रोशनी लेकर रास्ता दिखाना चाहा। विराज ने मना करके कहा—ज़रूरत नहीं है, तू अकेला लौटकर न आ सकेगा। और वह पलक मारते अन्धकार में अदृश्य हो गई।

आज चांडाल के घर वह भीख माँगने आई, भीख माँगकर ले भी गई, अथ च इतना वड़ा अपमान उसे उतना नहीं खला। शोक, दुःख अपमान, अभिमान किसी बात की तीव्रता का अनुभव करने की शक्ति उसके शरीर में नहीं रह गयी थी।

घर लौटकर उसने देखा, नीलांवर आ गया है। स्वामी को उसने तीन

दिन से देखा न था। नजर पड़ते ही उसके देह के रक्त की प्रत्येक बूंद तक उद्दाम हो उठी और एक दुर्निवार आकर्षण प्रचण्ड वेग से उसे लगातार उसी ओर खींचने लगा ; किन्तु इस समय वह उसे एक पग भी न डिगा सका।

तीव्र बिजली के संस्पर्श से धातु जैसे शक्तिम हो उठती है, वैसे ही स्वामी को समीप पाकर पलभर में ही वह शक्तिमयी हो उठी थी। तथापि अम्पूर्ण आकर्षण के विरुद्ध वह सुन्न-सी खड़ी होकर एकटक ताकती रही।

नीलांबर ने केवल एक बार सिर उठाकर ही गर्दन झुका ली थी। उसी दृष्टिपात में बिराज ने देख लिया था कि उसकी दोनों आँखें गुड़हल के फूल के समान घोर लाल हो रही हैं। उससे यह छिपा नहीं रहा कि मुर्दा फूंकने के लिए जाकर इन सब लोगों ने इन तीन दिनों में लगातार गाँजा पिया है। पाँच-छ. मिनट तक इसी तरह रहकर उसने पास आकर पूछा—भोजन नहीं हुआ ?

नीलांबर ने कहा—नहीं।

विराज और कोई प्रश्न न करके चौके में जा रही थी, नीलांबर ने सहसा पुकारकर कहा—सुनो। इतनी रात को अकेले कहाँ गई थीं ?

विराज ने खड़े होकर ज़रा देर इधर-उधर करके कहा—घाट।

नीलांबर ने अविश्वास के स्वर में कहा—ना, घाट तुम नहीं गई।

"तो फिर यमराज के घर गई थी !" कहकर विराज चौके में चली गई। लगभग घन्टे भर बाद भात परोसकर जब वह बुलाने आई, उस समय नीलांबर आँखें मूंदे ऊँघ रहा था। अत्यधिक गाँजा पीने की महिमा से उस समय उसका माथा गरम था और बुद्धि पर पर्दा पड़ा हुआ था। वह सीधा होकर उठ बैठा और पहले के प्रश्न को दुहराता हुआ बोला—कहाँ गई थीं ?

बिराज ने कुछ कड़ी बात कहने के लिए उद्यत जीभ को ज़ोर से काट कर, निवृत्त करकें, शान्त भाव से ही जबाब दिया—आज खा-पीकर सो रहो, यह बात कल सुन लेना।

नीलांबर ने सिर हिलाकर कहा—नहीं, आज ही सुनूंगा। कहाँ गई थीं, बोलो ?

उसकी ज़िद का ढंग देखकर इतने दुःख में भी विराज ने हँसकर कहा—अगर न बताऊँ ?

नीलांबर ने कहा—बताना ही होगा। बताओ।

विराज ने कहा—मैं यह किसी तरह न बताऊँगी। पहले खाकर सोओ, तब सुन सकोगे।

नीलांबर ने इस हँसी पर कुछ ध्यान न दिया। दोनों आँखें फैलाकर सिर उठाया। उन आँखों में अब वह खुमारी या आच्छन्न भाव न था, हिंसा और घृणा फूटकर बाहर निकल रही थी। उसने भयानक स्वर में कहा—ना, किसी तरह नहीं, बिना सुने तुम्हारे हाथ का पानी तक मैं नहीं पियूँगा।

विराज चौंक पड़ी। जान पड़ता है, काले नाग के डस लेने पर भी आदमी इस तरह नहीं चौंक उठता। वह लड़खड़ाते-लड़खड़ाते दरवाज़े के पास तक पीछे हटकर ज़मींन पर बैठ गई। बोली—क्या कहा ? मेरा छुआ पानी तक नहीं पियोगे ?

ना, किसी तरह नहीं।

विराज ने पूछा—क्यों ?

नीलांबर चिल्ला उठा— उस पर पूछती हो, क्यों ?

विराज चुपचाप स्थिर दृष्टि से स्वामी के मुँह की ओर ताकती रही। अन्त में धीरे से बोली—समझ गई। अब नहीं पूछूँगी। मैं भी किसी तरह नहीं कहूँगी क्योंकि कल जब तुम्हें होश होगा, तब आप ही समझ जाओगे। इस समय तुम अपने आपे में नहीं हो।

नशेबाज़ सब सह सकता है, लेकिन अपनी बुद्धि भ्रष्ट होने की बात नहीं सह सकता। बेहद कुपित होकर नीलांबर कहने लगा—मैंने गाँजा पिया है, यही तो कहती हो ? गाँजा आज मैंने कुछ नया नहीं पिया, जो मैं होश-हवाश में नहीं रहूँ। बल्कि होश में तू नहीं है—तूने ज्ञान गँवा दिया है। तू अब अपने आपे में नहीं है।

बिराज वैसे ही उसका मुँह ताकती रही।

नीलांबर ने कहा—किसकी आँखों में धूल झोंकना चाहती है विराज ? मेरी ? मैं बड़ा ही मूर्ख हूँ, इसी से उस दिन पीतांबर की किसी बात पर

मैंने विश्वास नहीं किया। लेकिन वह छोटा भाई है, उसने यथार्थ भाई का ही काम किया था। नहीं तो तू क्यों नहीं कह सकती कि कहाँ थी? क्यों झूठ कहा कि तू घाट पर थी?

विराज की दोनों आँखें अब ठीक पागल की आंखों की तरह दहकने लगीं। तथापि कण्ठस्वर को संयत करके जवाब दिया—झूठ बात इसलिए कही थी कि वह बात सुनकर तुम लज्जित होगे, दुःख पाओगे, शायद तुम्हारा खाना न होगा, इसी से। लेकिन वह भय मिथ्या है। तुम्हें लज्जा-शरम भी नहीं है, अब तुम मनुष्य भी नहीं रहे।—लेकिन तुमने झूठ बात नहीं कही? एक पशु को भी इतना बड़ा छल करते लज्जा होती, किन्तु तुमको नहीं हुई! भले आदमी, बीमार स्त्री को घर में अकेली छोड़कर किस शिष्य के घर में तीन दिन तक तुम गांजे की दम पर दम लगा रहे थे, बताओ?

अब नीलांबर बर्दाश्त न कर सका। 'बताता हूँ!' कहकर हाथ के पास रक्खा हुआ खाली पान का डिब्बा उठाकर उसने विराज के माथे को ताक कर ज़ोर से खींच मारा। बड़ा डिब्बा इसके कपार में लगकर झन-से नीचे खुलकर गिर गया। देखते-देखते उसकी आँख के कोने से बह कर होठों के किनारे तक खून फैल गया।

बाएँ हाथ से माथा दबाकर विराज चिल्ला उठी—मुझे मारा?

नीलांबर के होठ और मुँह क्रोध से कांपने लगे। बोला—ना, मारा नहीं! लेकिन दूर हो मेरे सामने से—यह मुँह अब न दिखा—अलक्ष्मी, दूर हो जा!

विराज उठकर खड़ी हो गई। बोली—जाती हूँ।

एक पग आगे बढ़ाकर सहसा लौटकर खड़ी होकर बोली—लेकिन सह तो सकोगे? कल जब याद आवेगा कि बुखार के ऊपर तुमने मुझको मारा है, निकाल दिया है, तब उसे सह सकोगे? मैंने तीन दिन से कुछ खाया-पिया नहीं, तो भी इस अन्धकार में तुम्हारे लिए भीख माँगकर लाई हूँ। इस अलक्ष्मी को छोड़कर रह तो सकोगे?

रक्त देखकर नीलांबर का नशा उतर गया था। वह मूढ़ की तरह चुप हो रहा।

विराज ने धोती के आँचल से रक्त पोंछकर कहा—इधर साल भर से

जाने के लिए सोच रही थी, लेकिन तुमको छोड़कर नहीं जा सकी। आँख उठाकर देखो, मेरी देह में कुछ नहीं रह गया है, आँखों से अच्छी तरह नहीं सुझाता, एक पग भी चलने की शक्ति नहीं है। मैं न जाती, लेकिन स्वामी होकर जो लांछन तुमने मुझ पर लगाया है, उससे अब मैं तुमको मुँह नहीं दिखाऊँगी। तुम्हारे पैरों के नीचे मरने का लोभ ही मेरा सबसे बड़ा लोभ था। इसी लोभ को मैं किसी तरह छोड़ नहीं पा रही थी। आज उसे भी छोड़ती हूँ। कहकर माथे का रक्त पोंछते-पोंछते वह खिड़की के खुले द्वार से फिर एक बार अन्धकारपूर्ण बाग में जाकर अदृश्य हो गई।

नीलांबर ने कुछ कहना चाहा, लेकिन ज़बान न हिला सका; दौड़कर पीछे-पीछे जाना चाहा, लेकिन उठ नहीं सका। किसी जादू के मंत्र से उसे अचल पत्थर की मूर्ति बनाकर विराज आँखों से ओझल हो गई।

आज एक बार उस सरस्वती नदी की ओर आँख उठाकर देखो, डर मालूम होगा। वैशाख की स्वल्प जल वाली, धीरे बहने वाली नदी सावन के अन्तिम दिनों में कैसे तीव्र वेग से दोनों किनारों को डुबाकर तेज़ धारा से बह रही है। जिस काले पत्थर के ऊपर एक दिन वसंत के प्रभात में दोनों भाई-बहनों को असीम स्नेह-सुख से एक साथ बैठे हमने देखा था, उसी काले पत्थर के ऊपर विराज आज अँधेरी रात में किस हृदय को लेकर काँपते-काँपते आकर खड़ी हो गई।

नीचे गहरी जल-राशि सुदृढ़ प्राचीर की दीवार से धक्का खाकर—टकराकर भँवरें बनाती हुई बह रही थी। उसी ओर एक बार झुककर देखकर वह सामने ताकती रही। उसके पैरों के नीचे काला पत्थर, सिर के ऊपर बादलों से घिरा नीला आकाश, सामने काला जल, चारों ओर घना काला निस्तब्ध वन और हृदय के भीतर इन सबसे अधिक काली आत्महत्या की प्रवृत्ति। वह वहीं बैठकर अपने आँचल से अपने हाथ-पैर मज़बूती के साथ लपेटकर बाँधने लगी।

१२

तड़के आकाश में गहरे बादल छाये थे, टिप-टिप करके पानी गिर रहा

था। नीलांबर खुले दरवाज़े की चौखट पर सिर रखकर किसी समय सो गया था। सहसा उसके सोये हुए कानों में आवाज़ आई—बहूजी!

नीलांबर हड़बड़ाकर उठ बैठा। शायद श्याम का नाम सुनकर ऐसे ही किसी वर्षा के बादलों से घिरे प्रभात में श्रीराधाजी इसी तरह व्याकुल होकर उठ बैठी थीं। वह आँखें मलता हुआ बाहर आया। देखा, आँगन में खड़ा तुलसी पुकार रहा है। कल सारी रात वन-वन में हर एक वृक्ष के नीचे खोज-खोजकर, रोकर, घंटे डेढ़ घंटे पहले थका हुआ, डरा हुआ, नीलांबर लौट आया था और दरवाज़े पर ही बैठा था। उसके बाद न जाने कब उसे नींद आ गई थी।

तुलसी ने पूछा—माँजी कहाँ है बाबू ?

नीलांबर हतबुद्धि की तरह उसकी ओर ताकता हुआ बोला—तब तू किसे पुकार रहा था ?

तुलसी ने कहा—बहूजी को ही तो पुकारता हूँ बाबूजी! कल पहर रात बीते घोर अँधेरे में जाकर माजी हमारे घर से मोटे चावल माँगकर लाई थीं। इसीसे सवेरे दरवाजा खुला पाकर जानने चला आया कि उस चावल से कुछ काम निकला ?

नीलांबर मन-ही-मन सब समझ गया, लेकिन कुछ बोला नहीं।

तुलसी बोला—तो इतने तड़के खिड़की किसने खोली ? जान पड़ता है, बहूजी घाट पर गई हैं। इतना कहकर वह चला गया।

नदी के किनारे-किनारे जितने गढ़े थे, जितने मोड़ थे, जितनी झाड़ियाँ थीं, सबको देखते, खोजते, नीलांबर—जिसने न नहाया था, न खाया था—सहसा एक जगह रुक गया, यह क्या पागलपन मेरे सिर पर सवार हो गया है! क्या अब तक उसे यह याद आने को बाकी होगा कि दिन भर हुआ, मैंने कुछ खाया नहीं, अब भी क्या वह कहीं किसी कारण से क्षणभर भी ठहर सकती है ? तो फिर मैं यह कैसा अद्भुत काम सवेरे से करता फिर रहा हूँ ? यह सब आँखों के सामने ऐसा सुस्पष्ट होकर दिखाई देने लगा कि उसकी सारी दुश्चिन्ता एकदम धो-पुँछ गई। वह कीचड़ ठेलता, खेतों से ढेले तोड़ता, नाले को फाँदता अर्द्ध साँस से घर की ओर भागा।

जब दिन समाप्त होने को था, पश्चिम आकाश में सूर्यदेव ने क्षण भर

के लिए बादलों की फाँक से अपना लाल-लाल मुख बाहर निकाला था, उस समय घर में घुसकर वह सीधा रसोई घर में जाकर खड़ा हुआ। फ़र्श के ऊपर उस समय भी आसन बिछा हुआ है, गत रात्रि का परोसा हुआ भात सूखा पड़ा है, तिलचट्टे और चूहे दौड़ रहे हैं, किसी ने छोड़ा नहीं है। अँधेरे में उसने ग़ौर नहीं किया था, इस समय भात की शकल देखकर ही समझ गया कि यही तुलसी का दिया हुआ मोटा चावल है; यही निराहार भूखे स्वामी के लिए बिराज ज्वर से काँपती हुई अंधकार में छिपकर भीख माँग लाई थी, इसी के लिए उसने मार खाई, अश्राव्य कटु बात सुनकर लज्जा और धिक्कार के मारे वर्षा की भयानक रात्रि में वह घर छोड़कर चली गई है।'

नीलांबर वहीं बैठकर, दोनों हाथों से मुँह छिपाकर, स्त्रियों की तरह आर्त्तनाद करता हुआ धाड़ मारकर रो उठा। जबकि वह अभी तक लौटकर नहीं आई, तब उसके लौट आने की बात वह न सोच सका—अपनी पत्नी को वह जानता था। वह बिना किसी संशय के यह समझता था कि बिराज में कितना स्वाभिमान है, प्राण जाने पर भी पराये घर से आश्रय लेकर वह कभी इस कलंक को प्रकट करना नहीं चाहेगी। इसीलिए उसका हृदय भीतर से इतनी जल्दी इस तरह हाहाकार कर उठा। इसके बाद पेट के बल औंधा पड़कर, दोनों हाथ सामने फैलाकर, बिना विश्राम लिये बारबार कहने लगा—वह मैं सह न सकूँगा बिराज, तू आ!

सन्ध्या हो गई, इस घर में किसी ने दीपक नहीं जलाया, रसोई के चौक में किसी ने खाना बनाने के लिए प्रवेश नहीं किया। रोते-रोते नीलांबर की आँखें और मुँह फूल गया, किसी ने आँसू नहीं पोंछे, दो दिन के भूखे-प्यासे नीलांबर को किसी ने खाने के लिए नहीं बुलाया। बाहर ज़ोर से पानी बरसने लगा, घने गहरे अंधकार को चीरकर बिजली की रेखा चमक-चमककर उसकी बन्द आँखों को भीतर तक उद्भासित करके दुर्योग की खबर जता जाने लगी, तो भी वह उठकर बैठा नहीं, आँखें नहीं खोलीं, एकदम ज़मीन में मुँह डालकर गों-गों करने लगा।

जब उसकी नींद टूटी, तब सवेरा हो चुका था। बाहर की ओर एक अस्पष्ट कोलाहल सुनकर, दौड़ आकर, उसने देखा, दरवाज़े पर एक बैल-

गाड़ी खड़ी है। व्यस्त होकर उसके सामने खड़े होते ही छोटी बहू घूंघट निकालकर उतर पड़ी। बड़े भाई के ऊपर एक तिर्छी नज़र डालकर पीतांबर उस तरफ चला गया। छोटी बहू ने पास आकर, धरती पर सिर रख-कर जैसे प्रणाम किया, वैसे ही नीलांबर अस्फुट स्वर में कुछ आशीर्वाद उच्चारण करने के साथ ही ज़ोर से रो उठा। विस्मित छोटी बहू जब तक अपना झुका हुआ सिर उठावे, तब तक नीलांबर तेज़ी के साथ न जाने कहाँ अदृश्य हो गया।

छोटी बहू जीवन में आज पहली बार अपने स्वामी के खिलाफ़ प्रति-वाद करके टेढ़ी होकर खड़ी हो गई। आँसुओं के बोझ से लदे, लाल हो गये दोनों नेत्र उठाकर उसने कहा—तुम क्या पत्थर के बने हो? दुःख-कष्ट में जीजी ने आत्म-हत्या कर ली, तब भी क्या हम गैर बने रहेंगे? तुम रह सको तो रहो, मैं आज से उस घर का सब काम करूँगी।

पीतांबर चौंक उठा—यह क्या कह रही हो?

मोहिनी ने तुलसी के मुँह से जितना सुना था और आप जितना अनुमान किया था, सब रोते-रोते सुना दिया।

पीतांबर सहज में विश्वास करनेवाला आदमी नहीं। बोला—उनकी देह तो पानी में उतरा आवेगी।

छोटी बहू ने आँखें पोंछकर कहा—नहीं भी उतरा सकती। धारा में बह गई हैं—हो सकता है, सती लक्ष्मी की देह को माता गंगा ने अपनी गोद में उठाकर रख लिया हो। इसके सिवा, खोज ही किसने की है, कौन पता लगाता फिरा है?

पीतांबर ने पहले विश्वास नहीं किया, अन्त में किया, कहा—अच्छा, मैं खोज कराता हूँ। ज़रा सोचकर कहा—भाभी मामा के घर तो नहीं चली गई?

मोहिनी ने सिर हिलाकर कहा—कभी नहीं। वह बड़ी आन-बान की थीं वह कहीं नहीं गईं, नदी में ही प्राण दे दिये हैं।

अच्छा, वह भी देखता हूँ, कहकर पीतांबर सूखा मुँह लिये बाहर चला गया। आज एकाएक भाभी के लिए उसका जी खराब हो गया। लोगों को लगाकर, अपने एक असामी को विराज के मामा के घर पता लगाने के लिए

भेजकर, जीवन में आज उसने पहली बार पुण्य-कार्य किया। स्त्री को पुकार-कर कहा—यदु से कहकर आँगन का बेड़ा तुड़वा दो, और तुम से जो हो सके वह करो। दादा के मुँह की ओर तो देखा नहीं जाता।

इतना कहकर, थोड़ा-सा गुड़ मुँह में डालकर और पानी पीकर, बस्ता बगल में दबाकर वह अपने काम पर चला गया। चार-पाँच दिन नागा होने से उसका बहुत नुकसान हो गया था।

काम करते-करते छोटी बहू बराबर आँसू पोंछकर यही सोच रही थी कि ये जिस मुँह की ओर देख नहीं सकते वह मुँह न जाने कैसा हो गया है!

नीलांबर चंडीमण्डप के बीच आँखें मूँदे निश्चल स्तब्ध बैठा था। सामने की दीवार में राधाकृष्ण की जुगल-जोड़ी का चित्र-पट टँगा था। यह पट जाग्रत् देवता है। जब रेलगाड़ी नहीं चली थी, तब नीलांबर के बाबा पैदल यात्रा करके इसे वृन्दावन से लाये थे। वह परम वैष्णव थे। उनसे यह पट मनुष्य की वाणी में बातें करता था—यह इतिहास नीलांबर ने अपनी माता के मुँह से बहुत दफे सुना था। ठाकुर देवता की बात उसके निकट कोई धुँधला अस्पष्ट मामला न था। उस तरह सच्चे विश्वास के साथ पुकार सकने से ये सामने आकर बोलते हैं—बात करते हैं, यह सब उसके निकट प्रत्यक्ष सत्य था। इसी से, अब से पहले, छिपाकर इस पट को बोलवाने का प्रयास वह न जाने कितना और कितनी बार कर चुका है; लेकिन सफल नहीं हुआ। अथ च, इस निष्फलता का कारण उसने अपनी अक्षमता को ही माना है। उसके मन में यह संशय कभी किसी दिन नहीं उठा कि चित्रपट सचमुच ही नहीं बोलता है! लिखना-पढ़ना उसने सीखा नहीं। अक्षर भर पहचाने थे। उसके बाद विराज से उसने रामायण, महा-भारत पढ़ना और थोड़ा-बहुत चिट्ठी-पत्री लिख लेना सीखा था। शास्त्र या धर्मग्रंथों के पास भी वह नहीं फटका था, इसी से ईश्वर-सम्बन्धी धारणा उसकी बहुत ही स्थूल रूप में थी। अथ च, इस सम्बन्ध में कोई युक्ति-तर्क भी वह सहन न कर सकता था। छोटी अवस्था में इन्हीं बातों को लेकर कभी पीतांबर के साथ और कभी विराज के साथ उसकी मार-पीट तक हो जाती थी।

विराज नीलांबर से केवल चार साल छोटी थी। इसलिए उसे उतना मानती न थी। एक बार विराज ने मार खाकर नीलांबर के पेट में काटकर खून निकाल दिया। सास ने दोनों को छुड़ा दिया और विराज की भर्त्सना करके कहा था—छिः बेटी, गुरुजन को इस तरह काटना न चाहिए।

विराज ने रोते-रोते कहा था—उसने मुझे पहले मारा था।

तब उन्होंने पुत्र को बुलाकर क़सम धरा दी थी कि वह अब फ़िर कभी विराज की देह पर हाथ न उठाये। उस समय उसकी अवस्था चौदह वर्ष की थी, आज लगभग तीस वर्ष का हो चला है, लेकिन तब से मातृभक्त नीलांबर ने उस दिन तक माता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया।

आज स्तब्ध होकर बैठे हुए नीलांबर ने पुराने दिनों की यह सब भूली हुई कहानी याद करके पहले अपनी माता से क्षमा की भिक्षा मांगी, उसके बाद अपने उन्हीं जाग्रत् देवता को दो-चार सीधी बातों में बुदबुदाकर समझाकर कहने लगा—अन्तर्यामी भगवान्! तुम तो सब देख रहे हो! उसने जब लेशमात्र अपराध नहीं किया, तब सारा पाप मेरे ही सिर लादकर उसे स्वर्ग में जाने दो! यहाँ वह अनेक दुःख पाकर गई है, अब उसे और दुःख न देना। उसकी दोनों बंद आँखों के कोनों से आँसू गिर रहे थे। एकाएक उसका ध्यान भंग हो गया।

बापू!

नीलांबर ने विस्मित होकर देखा, छोटी बहू थोड़ी दूर पर बैठी है। उसके मुख पर साधारण-सा घूंघट है। उसने सहज कंठ से कहा—मैं आपकी बेटी हूँ बापू! भीतर चलिए। नहा-धोकर आज आपको थोड़ा भोजन करना होगा।

पहले नीलांबर अवाक् होकर देखता रहा—जैसे कितने ही युग बीत गये, किसी ने उसे खाने के लिए नहीं पुकारा। छोटी बहू ने फिर कहा—बापू, रसोई हो गई है।

अब की नीलांबर समझा। एक बार उसका सारा शरीर काँप उठा। उसके बाद वह वहीं औंधा पड़कर रो उठा—रसोई हो गई बेटी!

गाँव में सभी ने सुना, सभी ने विश्वास किया कि बिराज बहू नदी में

डूबकर मर गई। केवल धूर्त पीतांबर ने विश्वास नहीं किया। वह मन ही मन तर्क करने लगा कि इस नदी में इतने मोड़ हैं, इतने झोप-झाड़ हैं, लाश कहीं न कहीं अवश्य अटक जायगी। नदी में नाव लेकर, किनारे-किनारे घूम-फिरकर और किनारे की भूमि के सारे वन-जंगल को अपने आदमी से रत्ती-रत्ती छनवाकर भी जब लाश का कोई चिह्न भी न पाया गया, तब उसे निश्चय के साथ विश्वास हो गया कि भाभी ने और चाहे जो किया हो, वह नदी में डूबकर नहीं मरी। कुछ समय पहले उसके मन में एक संदेह उठा था; अब फिर वही संदेह मन के भीतर चक्कर काटने लगा। मगर किसी के आगे उसे प्रकट करने का उपाय नहीं था। एक बार मोहिनी के आगे कहना शुरू किया तो वह जीभ काटकर, कानों में उँगली देकर पीछे हटकर बोली—तब तो देवी-देवता भी मिथ्या हैं, दिन भी झूठ है, रात भी झूठ है! फिर दीवार में टँगे हुए भगवती अन्नपूर्णा के चित्र की ओर देख कर बोली—मेरी जीजी इन्हीं भगवती का अंश थीं! इस बात को और कोई जाने या न जाने, मैं जानती हूँ! इतना कहकर वह चली गई।

पीतांबर ने क्रोध नहीं किया। एकाएक वह ऐसा बदल गया था, जैसे कोई दूसरा ही आदमी हो।

मोहिनी ने जेठ से बोलना शुरू कर दिया है। खाना परोस कर, ज़रा आड़ में बैठकर, पूछ-पूछकर, ज़रा-ज़रा करके, सारी घटना उसने सुन ली। सारे संसार में केवल उसी ने जाना कि क्या हुआ था; केवल उसी ने समझा कि कैसी मर्मभेदी व्यथा उनकी छाती में चुभ गई है।

नीलांबर ने कहा—बेटी, मैंने कितना ही दोष क्यों न किया हो, लेकिन जान-बूझकर तो किया नहीं। फिर किस तरह वह माया-ममता छोड़कर चली गई? अब और न सह सकती थी, क्या इसी से चली गई बेटी?

मोहिनी बहुत-सी बातें जानती थी। एक बार उसका जी चाहा कि कह दे—एक दिन जीजी अपने जाने की बात कहती थीं और उस दिन अपने स्वामी का सारा भार मुझे सौंप गई हैं। लेकिन कहा नहीं, चुप रही।

पीतांबर ने स्त्री से एक दिन पूछा—तुम क्या दादा से बोलती, बात करती हो?

मोहिनी ने कहा—हाँ। उन्हें वापू कहती हूँ, इसी से बोलती हूँ।

पीतांबर ने हँसकर कहा—लेकिन लोग जो सुनकर निंदा करेंगे?

मोहिनी ने रुष्ट भाव से कहा—लोग और क्या कर सकते हैं जो करेंगे? वे अपना काम करें, मैं अपने काम करूँगी। इस हालत में अगर मैं उनको बचा सकी तो लोक-निन्दा को सिर-आँखों पर ले लूंगी। कहकर वह काम से चली गई।

१३

पंद्रह महीने बीत गये। आगामी शारदीया पूजा के आनन्द का आभास जल में, स्थल में, आकाश में, हवा में, सर्वत्र तैरता फिर रहा है। तीसरे पहर नीलांबर एक कंबल के आसन पर स्थिर बैठा है। देह अत्यन्त कृश, मुख कुछ पीला-सा, छोटी-छोटी जटायें, आँखों में वैराग्य और विश्वव्यापी करुणा। महाभारत की पोथी बंद करके उसने विधवा बहू को संबोधन करके कहा—बेटी, जान पड़ता है, आज पूँटी वगैरह का आना न हुआ।

सफ़ेद, बिना किनारी की धोती पहने, निराभरणा छोटी बहू कुछ ही दूर पर बैठी अब तक महाभारत सुन रही थी। दिन की ओर देखकर बोली—नहीं बापू, अब भी समय है, आ भी सकते हैं।

दुर्दान्त ससुर के मर जाने के कारण अब पूँटी स्वाधीन है। वह स्वामी और दास-दासियों को साथ लेकर आज अपने बाप के घर आ रही है और यह खबर पहले ही भेज दी है कि पूजा के दिनों में वह यहीं रहेगी। अब भी उसे कुछ पता नहीं है। उसकी माता के समान भाभी नहीं है—छः महीने पहले साँप के काटने से छोटा भाई मर गया है, यह कुछ भी वह नहीं जानती।

नीलांबर ने एक साँस छोड़कर कहा—जान पड़ता है, वह न आती तो अच्छा होता। एक साथ इतना दुःख वह कैसे सह सकेगी बेटी?

अत्यन्त प्यारी छोटी बहन को याद करके बहुत दिन के बाद आज उसकी सूखी आँखों में आँसू दिखाई दिये। जिस रात को पीतांबर ने साँप के काटने पर के दोनों पैरों को पकड़कर कहा था कि मुझे कोई और

दवा नहीं चाहिए, केवल अपने पैरों की धूल मेरे माथे में, मुख में दे दो। इससे अगर मैं नहीं बचा, तो फिर बचना भी नहीं चाहता और यह कहकर सब तरह की झाड़-फूंक को जबर्दस्ती बंद कराकर वह लगातार उसके पैरों के नीचे सिर रगड़ता रहा। विष की यातना से छुटकारा पाने की आशा से अन्तिम घड़ी तक उसने पैर नहीं छोड़े। उसी दिन नीलांबर अपना आखिरी रोना रोकर चुप हो गया था। आज फिर उसकी उन्हीं आँखों में आँसू आ गये। पतिव्रता साध्वी छोटी बहू अपनी आँखों के आँसू गुप्त रूप से पोंछकर चुप हो रही।

नीलांबर धीरे-धीरे कहने लगा—उसके लिए भी उतना दुःख नहीं करता बेटी, मेरे पीतांबर की तरह बिराज को भी अगर भगवान उठा लेते तो आज मेरे लिए सुख का दिन था। सो तो हुआ नहीं। पूँटी अब बड़ी हो गई है, उसको समझ आ गई है। बताओ बेटी, अपनी भाभी का यह कलंक सुनकर उसके हृदय का क्या हाल होगा, अब तो वह सिर उठाकर देख भी न सकेगी।

सुन्दरी को इतनी आत्म-ग्लानि हुई कि उसे वह सहन नहीं कर सकी और लगभग दो महीने पहले उसने नीलांबर के आगे यह कबूल कर लिया कि उस रात को बिराज मरी नहीं, ज़मींदार राजेन्द्र के साथ घर छोड़कर चली गई है। नीलांबर का मानसिक कष्ट अब उससे देखा नहीं जा रहा था। उसने समझा था कि इस बात को सुनकर वह क्रोध के वश होकर शायद इस दुःख को भूल जायगा। घर आकर नीलांबर ने यह बात छोटी बहू से कही थी।

उसी बात को स्मरण करके छोटी बहू ने ज़रा देर चुप रहकर कोमल स्वर से कहा—ननदजी से कहने की ज़रूरत नहीं है।

कैसे छिपाऊँगा बेटी? जब वह पूछेगी कि भाभी को क्या हुआ था, तब क्या जवाब दूंगा?

छोटी बहू ने कहा—जिस बात को सब जानते हैं कि जीजी ने नदी में प्राण दिये हैं, वही।

नीलांबर ने सिर हिलाकर कहा—यह नहीं हो सकता बेटी। सुना है, पाप छिपाने से और बढ़ता है। हम उसके अपने आदमी हैं, हम उसके पाप

का बोझ और नहीं बढ़ा देंगे। यह कहकर वह ज़रा हँसा। उस उतनी-सी हँसी में कितनी व्यथा, कितनी क्षमा है, यह छोटी बहू समझ गई। दम-भर बाद छोटी बहू ने अत्यन्त संकोच के साथ मृदु स्वर से कहा—ये सब बातें शायद सच नहीं हैं बापू !

कौन सब बातें ? तुम्हारी जीजी की बातें ?

छोटी बहू सिर झुकाये चुप रही।

नीलांबर ने कहा—सच क्यों नहीं है बेटी, सब सच हैं। तुम जानती तो हो बेटी, क्रोध आने पर उस पगली को ज्ञान नहीं रहता था। जब जरा-सी थी, तब भी ऐसी ही थी और जब बड़ी हो गई, तब भी वही रही। उस पर जो अत्याचार और अपमान मैंने किया है, मैं समझता हूँ, उसे स्वयं भगवान् भी नहीं सह सकते, वह तो मनुष्य ठहरी।

नीलांबर ने हाथ से एक बूंद आँसू पोंछकर कहा—याद आने से छाती फट जाती है बेटी, अभागिन ने तीन दिन से कुछ खाया-पिया न था, ज्वर से काँपते-काँपते मेरे लिए कुछ चावल भीख माँगने गई थी, इसी अपराध पर मैंने—इसके आगे कुछ बोला नहीं गया। धोती का खूँट मुँह में भर-कर, उमड़ी हुई रुलाई को ज़बरदस्ती रोककर, वह फूल-फूल उठने लगा।

छोटी बहू आप भी उसी तरह रो रही थी। उसके मुँह से भी कोई बात नहीं निकल सकी। इसी तरह बहुत समय बीत गया। बहुत देर बाद कुछ प्रकृतिस्थ होकर आँख-मुँह पोंछकर, नीलांबर ने कहा—बहुत-सी बातें तुम जानती हो, तब भी सुनो बेटी। मालूम नहीं किस तरह, उसी रात को वह अज्ञान उन्मत्त होकर सुन्दरी के घर जा पहुँची थी, उसके बाद —ओह !—रुपयों के लोभ से सुन्दरी उस पगली को उसी रात राजेन्द्र बाबू के बजरे पर चढ़ा आई—

उसकी बात पूरी होते-न-होते ही मोहिनी अपने को भूलकर, लाज-शरम भूलकर उच्च कण्ठ से कह उठी—यह कभी सच नहीं है बापू, कभी सच नहीं है। जीजी की देह में प्राण रहते ऐसा काम कोई उन से नहीं करा सकेगा। वे तो सुन्दरी का मुँह तक नहीं देखती थीं।

नीलांबर ने शान्त भाव से कहा—यह भी मैंने सुना है। शायद तुम्हारी बात ही सच है बेटी, उसके शरीर में प्राण न थे। अच्छी तरह ज्ञान-बुद्धि

होने के पहले ही वह उसने मुझे अर्पण कर दिये थे। सो तो ले नहीं गई, आज भी वे मेरे पास हैं। इतना कहकर आँखें वन्द कर जैसे वह अपने हृदय की भीतरी तह तक डूबकर देखने लगा।

छोटी वहू मुग्ध होकर उस शान्त, पीले, आँखें मुंदे मुख की ओर ताकती रही। उस मुख में क्रोध या हिंसा द्वेष की तनिक-सी भी छाया नहीं थी। थी केवल असीम व्यथा और अनन्त क्षमा की अनिर्वचनीय महिमा। वह गले में आँचल डालकर प्रणाम करके नीलांबर की चरण-रज माथे से लगाकर उठ गई। सन्ध्या दीप जलाते-जलाते वह मन ही मन बोली, जीजी ने पहिचान लिया था, इसी से वे एक दिन भी इन्हें छोड़कर नहीं रहना चाहती थीं।

लंबे चार वर्षों के बाद पूंटी मायके आई है, और वड़े आदमी की तरह ही आई है। उसके स्वामी, छः महीने के शिशु पुत्र, पाँच-छः दास-दासी और अगणित चीजों से सारा घर भर गया। स्टेशन पर उतरते ही यदु नौकर से खवर सुनकर वह वहीं से रोने लगी थी। ऊंचे स्वर से रोते-रोते, सारे मोहल्ले को चौंकाकर, रात एक पहर वीतने के बाद घर में प्रवेश करके, दादा की गोद में सिर डालकर, वह औंधी गिर पड़ी। उस रात को उसने पानी तक नहीं पिया, दादा को भी नही छोड़ा और मुंह ढके रखकर ही थोड़ा-थोड़ा करके सब हाल सुना। पहले वह भाभी को तो वल्कि डरती थी, संकोच करती थी, किन्तु दादा को जैसे ठीक पुरुष ही नहीं मानती थी, संकोच भी नहीं करती थी। उसका सारा रूठना और सारे उपद्रव इस दादा पर ही थे। ससुराल जाने के पहले दिन भी भावज की झिड़की खाकर वह दादा के गले ही से लिपटकर वेहद रोई थी। उसके उसी दादा को जिन्होंने इतने दिन इतना दुःख दिया, ऐसा जीर्ण-शीर्ण, ऐसा पागल-सा कर दिया है, उसके ऊपर उनके क्रोध और द्वेष की सीमा नहीं रही। अपने दादा के इतने वड़े दुःख के आगे पूंटी ने अपने सारे दुःख को तुच्छ मान लिया। उसे अपनी ससुराल वालों के ऊपर घृणा उत्पन्न हो गई, छोटे दादा की साँप के काटे से मृत्यु उसे खटकी नहीं और उसकी दुखिया विधवा की ओर से उसने एकदम मुंह फेर लिया।

दो दिन बाद उसने अपने स्वामी को बुलाकर कहा—मैं दादा को लेकर पश्चिम घूमने जाऊँगी, तुम यह सब लाव-लश्कर लेकर घर लौट जाओ। और अगर जी चाहे तो, न हो, तुम भी साथ चलो।

यतीन्द्र ने अनेक युक्ति-तर्क के बाद पिछला काम ही सहज साध्य समझा और फिर एक बार सब असबाब बाँधने-बूँधने की तैयारी करने चला गया। यात्रा की तैयारी होने लगी। पूँटी ने सुन्दरी को गुप्त रूप से बुला भेजा था, लेकिन वह आई नहीं। जो बुलाने गया था, उससे कह दिया कि मैं यह मुँह न दिखा सकूँगी और जो कुछ कहने का था, सब कह चुकी हूँ। और कुछ कहने को नही है।

पूँटी क्रोध से होठ चबाकर चुप हो रही। पूँटी की घोर उपेक्षा और उससे भी अधिक निष्ठुर व्यवहार ने छोटी बहू के हृदय को कैसी चोट पहुँचाई, इसे अन्तर्यामी के सिवा और किसी ने नहीं जाना। छोटी बहू ने हाथ जोड़कर मन-ही-मन जिठानी को स्मरण करके कहा—जीजी, तुम्हारे सिवा और कौन मुझे समझेगा? तुम कहीं भी हो, तुमने अगर मुझे क्षमा कर दिया है, तो वही मेरे लिए सब कुछ है। छोटी बहू सदा से निस्तब्ध प्रकृति की है। आज भी वह चुपचाप सब की सेवा करने लगी, किसी से भी कुछ नहीं कहा। जेठ को खिलाने का भार पूँटी ने ले लिया था, इसलिए इधर कई दिन वहाँ भी उसके बैठने की ज़रूरत नहीं हुई।

जाने के दिन नीलांबर ने अत्यन्त विस्मित होकर कहा—तुम नहीं चलोगी बहू?

छोटी बहू ने चुपचाप गर्दन हिला दी।

पूँटी लड़के को गोद में लिये दादा के पास आकर सुनने लगी।

नीलांबर ने कहा—यह नहीं हो सकता बेटी! तुम अकेली यहाँ कैसे रहोगी और यहाँ रहकर ही क्या होगा बेटी? चलो।

छोटी बहू ने वैसे ही सिर झुकाये गर्दन हिलाकर कहा—नहीं बापू, मैं कहीं न जा सकूँगी।

छोटी बहू के मायके की माली हालत बहुत अच्छी है। विधवा लड़की को ले जाने की उन लोगों ने अनेक बार चेष्टा की थी; किन्तु वह किसी तरह नहीं गई।

तब नीलांबर समझता था कि छोटी बहू केवल मेरे ही कारण नहीं जाती। किन्तु अब सूने घर में वह क्यों अकेली पड़ी रहना चाहती है, यह वह किसी तरह नहीं समझ सका। पूछा—क्यों बेटी, क्यों कहीं नहीं जा सकोगी ?

छोटी बहू चुप रही।

न बताओगी तो मेरा जाना न होगा बेटी !

छोटी बहू ने मृदु कण्ठ से कहा—आप जाइए, मैं रहूँगी।

क्यों ?

छोटी बहू फिर कुछ देर चुप रहकर जैसे मन-ही-मन एक संकोच की जड़ता को प्राणपण से दूर करने की चेष्टा करने लगी, उसके बाद थूक घूँट-कर बहुत धीरे से बोली—जीजी शायद कभी आ जावें, इसी से मैं कहीं न जा सकूँगी बापू !

नीलांबर चौंक उठा। तेज़ बिजली की चमक से आँखें चौंधिया जाने पर जैसा होता है, वैसा ही अंधकार उसने चारों ओर देखा। किन्तु केवल क्षण-भर के लिए। तत्काल ही अपने को सँभालकर अत्यन्त क्षीण जरा-सी हँसी-हँसकर बोला—छि: बेटी, तुम भी अगर ऐसी पागलपन की बात कहो, ऐसी अबूझ हो जाओ, तो फिर मेरा क्या उपाय होगा ?

छोटी बहू ने पलभर आँखें मूँदकर अपने हृदय के भीतर देखा। उसके बाद संशयलेशहीन स्थिर धीमे स्वर से कहा—मैं अबूझ नहीं हो गई हूँ बापू ! आप जो जी चाहे कहिए। किन्तु जब तक चन्द्रमा और सूर्य को उदय होते देखूँगी, तब तक किसी की कोई बात पर विश्वास नहीं करूँगी।

भाई और बहन पास-पास खड़े होकर, अवाक् होकर, उसकी ओर ताकने लगे। उसने वैसे ही सुदृढ़ स्वर में कहा—स्वामी के चरणों में सिर रखकर मरने का वरदान जीजी ने आपसे माँग लिया था। वह वर कभी किसी तरह निष्फल नहीं हो सकता। सती लक्ष्मी जीजी निश्चय ही लौट आवेंगी। जब तक जियूँगी, इसी आशा से उनकी राह देखती रहूँगी। मुझसे कहीं जाने के लिए न कहिएगा बापू ! इतना कहकर एक साँस में बहुत बोल जाने के कारण वह सिर झुकाकर हाँफने लगी।

अब नीलांबर से और सहा नहीं गया। रुलाई उसके गले तक आकर

बाहर निकलने के लिए ज़ोर मारने लगी। कहीं आड़ में जाकर उसे निकालने के लिए वह दौड़कर भाग गया।

पूँटी ने एक बार चारों ओर नज़र डालकर देखा, उसके बाद पास आकर अपने लड़के को पैरों के पास बिठाकर, आज पहले पहल इस विधवा भावज के गले से लिपटकर अस्फुट स्वर में रोते हुए कहा—भाभी! कभी तुमको पहचान नहीं पाई भाभी—मुझे क्षमा करो।

छोटी बहू ने झुककर उसके बच्चे को उठाकर छाती से लगा लिया और उसके मुँह से मुँह लगाकर अपने आँसू छिपाती हुई वह रसोईघर में चली गई।

१४

विराज का मरना ही उचित था, लेकिन वह मरी नहीं। उसी रात को, मरने के ठीक पहले क्षण में, उसके बहुदिनव्यापी दुःख दैन्य से पीड़ित, दुर्बल और विकृत मस्तिष्क ने अनाहार और अपमान की असह्य चोट से, मरने की राह छोड़कर सम्पूर्ण रूप से विभिन्न राह में पैर बढ़ा दिया। मृत्यु को छाती पर रखकर जब वह अपने हाथ-पैर आँचल से बाँध रही थी, उसी समय कहीं बिजली गिरी। उस भयानक शब्द से चौंककर, सिर उठाकर, उसी के तीव्र प्रकाश में उस पार का वह नहाने का घाट और वही मछली पकड़ने के लिए बनाया गया लकड़ी का मचान उसकी नज़र में पड़ गया। वे जैसे अब तक ठीक इसी की अपेक्षा में चुपचाप आँखें खोले उसकी ओर देख रहे थे। चार आँखें होते ही इशारे से उसे पुकार उठे। विराज सहसा भयानक स्वर में कह उठी—वे साधु-पुरुष मेरे हाथ का पानी तक नहीं पियेंगे, किन्तु यह पापिष्ठ तो पियेगा! अच्छी बात है!

लोहार की धौंकनी के मुँह पर जलता हुआ कोयला जैसे दहककर जलकर राख हो जाता है, ठीक वैसे ही विराज के प्रज्वलित मस्तिष्क के सामने उसका अतुलनीय अमूल्य हृदय भी जलकर सुलगकर राख हो गया। वह स्वामी को भूल गई, धर्म को भूल गई, मरण को भूल गई और एकटक प्राण-पण से उस पार के घाट की ओर ताकने लगी। फिर ज़ोर से गरजकर कड़-

कड़ाहट के साथ अन्धकार में आकाश की छाती चीरती हुई विजली कौंध गई। विराज की फैली हुई दृष्टि संकुचित होकर अपनी ओर लौट आई। एक वार मुँह वढ़ाकर उसने पानी की ओर देखा एक वार गर्दन घुमाकर घर की ओर देखा, इसके वाद फुर्ती से अपने हाथ के बाँधे वंधन खोलकर पलक मारते ही वह अँधेरे वन में जाकर ग़ायव हो गई। उसके तेज़ पैरों के शब्द से कितने ही जीव-जन्तु खस-खस सर-सर करके राह छोड़कर हट गये; पर उसने उधर ध्यान ही नहीं दिया – वह सुन्दरी के पास जा रही थी। पंचानन ठाकुरतल्ले में उसका घर था। पूजा चढ़ाने जाकर विराज कई वार उसका घर देख आई थी। इस गाँव की वहू होकर भी वचपन में इस गाँव के प्रायः सभी राह-घाट वह जान-पहचान गई थी। थोड़ी ही देर में वह सुन्दरी की वन्द खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई।

इसके लगभग दो घंटे के वाद ही कंगाली नामक धीवर ने अपनी डोंगी उस पार की ओर छोड़ दी। अनेक रातों को वह पैसे के लोभ से सुन्दरी को उस पार पहुँचा आया है और आज भी जा रहा है। किन्तु आज एक की जगह दो स्त्रियाँ चुपचाप वैठी हैं। अंधकार में विराज का मुँह उसने नहीं देख पाया, देख भी लेता पहचान न पाता। अपने घाट के पास आकर दूर से ही अँधेरे किनारे पर एक अस्पष्ट दीर्घ सीधे शरीर को खड़ा हुआ देखकर विराज ने आँखें मूँद लीं।

सुन्दरी ने चुपके से फिर प्रश्न किया—किसने इस तरह मारा वहू?

विराज ने अधीर होकर कहा—मेरी देह पर उनके सिवा और कौन हाथ उठा सकता है सुन्दरी, जो तू वार-वार पूछ रही है? सुन्दरी अप्रतिभ होकर चुप हो रही।

और भी दो घंटे के वाद एक सुसज्जित वजरे ने जैसे ही लंगर उठाने का उपक्रम किया, विराज ने सुन्दरी की ओर ताककर कहा—तू साथ न चलेगी?

सुन्दरी ने कहा—नहीं बहू, मैं यहाँ नहीं रहूँगी तो लोग सन्देह करेंगे। जाओ वहू, डरो नहीं। फिर भेंट होगी।

बिराज ने और कुछ नहीं कहा। सुन्दरी कंगाली की डोंगी पर बैठकर अपने घर लौट गई।

ज़मींदार का सुन्दर सुडौल वजरा विराज को लेकर, किनारा छोड़कर, त्रिवेणी की ओर चल दिया। डांड़ के शब्द को दवाकर जोर की हवा चलने लगी। दूर पर एक किनारे मौन राजेन्द्र नीचा मुँह किये मदिरापान करने लगा। विराज पत्थर की मूर्ति की तरह पानी की ओर ताकती हुई वैठी रही। आज राजेन्द्र ने वहुत मदिरा पी थी। शराव का नशा उसके शरीर के रक्त को उत्तप्त और मस्तिष्क को उन्मत्तप्राय वना रहा था। वजरा जव सप्तग्राम की सीमा के वाहर हो गया, तव वह उठकर विराज के पास आ वैठा। विराज के रूखे केश विखरकर लोट रहे थे, माथे पर का आँचल खिसककर कंधे के ऊपर आ गया था—किसी वात का उसे होश न था। कौन आया, कौन पास वैठा, इस पर उसने ध्यान ही नहीं दिया।

लेकिन राजेन्द्र को यह क्या हो गया ? किसी भयंकर स्थान में सहसा अकेले आ पड़ने पर भूत-प्रेत के भय से आदमी के हृदय में जैसी हलचल मच जाती है, ठीक उसी तरह उसके मन में भी आतंक की आँधी उठ खड़ी हुई। वह ताकता ही रहा वुलाकर वातचीत नहीं कर सका।

अथ च इसी रमणी के लिए उसने क्या नहीं किया ? दो साल तक दिन-रात मन ही मन पीछा करता फिरा है; नींद में, जागते में, ध्यान करता रहा है; केवल आँखों से देख पाने के लोभ से—खाना-सोना भूलकर वन-जंगल में छिपा रहा है। जिसका स्वप्न में भी खयाल न था, वही खवर आज जव सुन्दरी ने आकर, सोते से जगाकर, उसके कान में कही थी, तव भाव के आवेश से अभिभूत होकर वहुत देर तक वह अपने इस सौभाग्य को हृदयंगम ही नहीं कर सका था।

सामने नदी घूमकर, दोनों किनारों के दो वड़े-वड़े वाँस के झुरमुटों, वहुत से पुराने वरगद और पाकर के वृक्षों के भीतर से होकर गई थी। जगह-जगह वाँस की कमचियाँ और वृक्षों की डालों ने जल के ऊपर तक झुककर सम्पूर्ण स्थान को घोर अन्धकार से भर रक्खा था। इस स्थान में प्रवेश करने के पहले राजेन्द्र ने साहस वटोरकर, कण्ठ की जड़ता हटाकर, किसी तरह कह डाला—तुम—आप—आप ज़रा भीतर चलकर वैठिए, यहाँ पेड़ों की डालियाँ वगैरह लगेंगी।

विराज ने मुँह घुमाकर देखा। सामने एक छोटा-सा दीपक जल रहा

था, उसी के क्षीण प्रकाश में दोनों की चार आँखें हुईं—पहले भी हो चुकी थीं। उस समय वह दुश्चरित्र पराई ज़मीन पर खड़े होकर भी उस दृष्टि को सहन कर सका था; किन्तु आज अपने अधिकार के भीतर अपने को शराब के नशे में चूर करके भी, वह इस दृष्टि के सामने अपना सिर सीधा नहीं रख सका, उसने गर्दन झुका ली।

लेकिन विराज ताकती ही रही। पर-पुरुष उसके इतने निकट बैठा है, अथ च मुख पर कोई आवरण नहीं है, सिर पर ज़रा-सा आँचल तक नहीं है। इसी समय बजरा के घनी छाया से ढकी हुई एक झाड़ी के भीतर घुसते ही डाँड़ चलाने वाले डाँड़ छोड़कर छोटी-छोटी डालियाँ हटाने में व्यस्त हो गये। यहाँ पर नदी अपेक्षाकृत सँकरी थी, इसीलिए भाटे का आकर्षण भी बहुत तेज था। 'ओ रे, सावधान!' कहकर राजेन्द्र ने डाँड़ चलाने वालों को सावधान करके उनके ऊपर नज़र रखकर विराज से 'कुछ लग जायगा, भीतर आइए' कहकर आप कमरे में चला गया।

विराज मोहाच्छन्न और यंत्र-चालित की तरह उसके पीछे-पीछे जाकर, कमरे के भीतर पैर रखते ही अकस्मात् 'मैया रे!' कहकर चिल्ला उठी।

उस चीत्कार से राजेन्द्र चौंक उठा। दीपक की अस्पष्ट धुँधली रोशनी में उस समय विराज की दोनों आँखें और रक्त से सना हुआ माँग का सेंदुर चामुण्डा के तीनों नेत्रों की तरह जल उठे थे। वह मतवाला शराबी उस अग्नि के सामने से बेंत खाये हुए कुत्ते की तरह एक भीत विकृत शब्द करके काँपता हुआ हट गया। बिना जाने अन्धकार में पैर के नीचे गीले, ठंडे और चिकने साँप पर पैर पड़ जाने से मनुष्य जैसे उछल पड़ता है, वैसे ही बिराज छिटककर बाहर आ गई। उसने एक बार पानी की ओर देखा, और उसके बाद ही 'मैया रे! यह क्या किया मैंने!' कहकर वह उसी अन्धकारपूर्ण अतल जल के बीच फाँद पड़ी।

डाँड़ चलाने वाले माँझी आर्त्तनाद कर उठे, इधर-उधर दौड़ पड़े, जिससे बजरा उलटने को हो गया। इसके सिवा वे और कुछ भी नहीं कर पाये। प्राणपण से जल की ओर ताक कर भी उस दुर्भेद्य अन्धकार में कुछ भी न देख पाये। राजेन्द्र अपनी जगह से जरा भी नहीं हिला। उसका सारा नशा उतर गया था, तो भी वह खड़ा रहा। कुछ देर में धारा के खिंचाव से

बजरा आप ही बाहर निकल आया। माँझी ने उद्विग्न मुख से पास आकर पूछा—बाबू साहब, क्या किया जायगा ? पुलिस में खबर देनी होगी ?

राजेन्द्र विह्वल की तरह उसके मुँह की ओर ताकते रहकर भर्राये हुए गले से बोला—क्यों, जेल जाने के लिए ? अरे गदाई, जिस तरह हो सके, भाग चल।

गदाई माँझी पुराना आदमी था, बाबू को पहचानता था। सभी पहचानते थे। इसीसे मामला कुछ-कुछ पहले से ही ताड़ गये थे, इस समय इस इशारे से उसकी आँखें खुल गईं। वह और सबको जमा करके चुपके-चुपके आज्ञा देकर बजरे को उड़ाता हुआ अदृश्य हो गया।

कलकत्ते के पास पहुँचकर राजेन्द्र ने स्वस्ति की साँस ली। गत रात्रि के अत्यन्त घने अंधकार में आमने-सामने बैठकर उसने जो आँखें देखी थीं, उन्हें स्मरण करके आज दिन के समय इतनी दूर आकर भी उसके शरीर में कँपकँपी आने लगी। उसने अपने कान पकड़कर मन-ही-मन कहा—इस जीवन में अब यह काम कभी न करूँगा। किसके भीतर क्या छिपा हुआ है, कोई नहीं जानता। उस पगली ने अपनी काल-रूप आँखों से उसके पैतृक प्राण नहीं हर लिए, इसीको अपना बड़ा भाग्य उसने समझा और किसी कारण से किसी भी समय उधर मुँह कर सकूँगा, इसका भरोसा उसे नहीं रहा। अब तक मूर्ख कुलटाओं से ही वह मिला-जुला था, सती क्या चीज है, यह उसे ज्ञान न था। आज उस पापिष्ठ को अपने कलुषित जीवन में पहले-पहल होश हुआ कि केंचुल से खेला जा सकता है, लेकिन जीवित विषधर इतने बड़े ज़मींदार के लड़के के भी खेलने की चीज़ नहीं।

१५

उस दिन तीसरे पहर जो स्त्री विराज के सिरहाने बैठी थी, उससे पूछकर विराज ने जाना कि वह हुगली के अस्पताल में है। बहुत दिन तक वात-श्लेष्मा-विकार के बाद जब उसे होश हुआ है, तभी से वह धीरे-धीरे अपनी बात स्मरण करने की चेष्टा कर रही थी। एक-एक करके बहुत-सी बातें उसे याद भी आई हैं।

एक दिन वर्षा की रात में उसके स्वामी ने उसके सतीत्व के ऊपर कटाक्ष किया था। पीड़ा से जर्जर, उपवास से शिथिल टूटी हुई उसकी देह और विकल मन उस निदारुण अपवाद को सहन नहीं कर सका। दुःख पर दुःख उठाते रहकर बहुत दिनों से ही वह शायद पागल-सी हो रही थी। उस दिन अभिमान और घृणा से 'अब उनका मुँह न देखूँगी' कहकर सारे बंधन तोड़-ताड़कर नदी में डूब मरने गई थी; किन्तु मरी नहीं।

उसके बाद ज्वर और मानसिक विकार की झोंक में वह बजरे पर चढ़ी थी और आधी राह में नदी में फाँदकर तैरकर किनारे पर पहुँच गई थी। भीगे सिर और भीगे कपड़ों से सारी रात अकेली बैठी वहाँ काँपती रही थी। अन्त को न जाने कैसे एक गृहस्थ के द्वार पर जाकर पड़ गई थी। बस, इतना ही याद आता है। यह याद नहीं पड़ता कि कौन यहाँ लाया, कब लाया, कितने दिनों से यहाँ इस तरह पड़ी हुई है। और याद आता है कि वह गृह-त्यागिनी कुलटा है, परपुरुष का आश्रय लेकर गाँव के बाहर हुई थी।

इसके आगेऔर कुछ वह सोच न पाती थी—सोचना भी नहीं चाहती थी। इसके बाद क्रमशः अच्छी होने लगी, उठकर थोड़ा-थोड़ा टहलने लगी। किन्तु भविष्य की ओर से अपनी चिन्ता को उसने प्राणपण से अलग रक्खा, वह कैसी घटना थी यह उसके शरीर का प्रत्येक अणु-परमाणु दिन-रात भीतर-भीतर अनुभव अवश्य करता था, किन्तु जो पर्दा पड़ा हुआ है, उसका ज़रा-सा कोना उठाकर देखने में भी भय से उसका सारा शरीर ठंडा पड़ जाता था, सिर में चक्कर आने लगता था और उसे बेहोशी-सी आती जान पड़ती थी।

एक दिन अगहन के महीने में सवेरे वही स्त्री उसके पास आकर बोली कि तुम अच्छी हो गई हो, अब तुम्हें यहाँ से अन्यत्र जाना होगा।

विराज 'अच्छा' कहकर चुप हो रही। वह स्त्री उस अस्पताल की ही थी। उसने समझा था कि इस बीमार दुखिया का कोई आत्मीय-स्वजन शायद नहीं है। उसने कहा—बुरा न मानना बच्ची, मैं पूछती हूँ कि जो लोग तुमको यहाँ रख गये थे, वे तो फिर किसी दिन देखने आये नहीं? वे क्या तुम्हारे अपने आदमी नहीं थे?

बिराज ने कहा—नहीं। उन्हें तो मैंने कभी आँख से नहीं देखा। एक

दिन वर्षा की रात में मैं त्रिवेणी के पास जल में डूब गई थी। जान पड़ता है, वे लोग ही दया करके मुझे यहाँ रख गये थे।

स्त्री ने कहा—ओह, जल में डूबी थीं ? तुम्हारा घर कहाँ है जी ?

विराज ने मामा के घर का नाम लेकर कहा—मैं वहीं जाऊँगी, वहाँ मेरे अपने आदमी हैं।

वह स्त्री अधिक अवस्था की थी और विराज के अच्छे स्वभाव के कारण उसके ऊपर कुछ ममता भी उसे हो गई थी। उसने दया से भीगे स्वर में कहा—वहीं जाओ बच्ची। जरा सावधानी से रहना, कुछ दिन में अच्छी हो जाओगी।

विराज ने ज़रा हँसकर कहा—अब अच्छी क्या होऊँगी माँ ? यह आँख भी ठीक न होगी और यह हाथ भी अच्छा न होगा।

रोग के बाद उसकी बायीं आँख अन्धी और बायाँ हाथ बेकार हो गया था। उस स्त्री की आँखों में आँसू भर आये। बोली—कहा नहीं जा सकता बच्ची, अच्छा भी हो सकता है।

दूसरे दिन वह अपना एक पुराना जाड़े का कपड़ा और कुछ राह-खर्च दे गई। विराज उसे लेकर, प्रणाम करके बाहर जा रही थी, सहसा लौटकर बोली—मैं जरा अपना मुँह देखूँगी, एक शीशा अगर हो—

"है क्यों नहीं, अभी देती हूँ" कहकर ज़रा देर में ही लौट आकर एक आईना विराज के हाथ में देकर वह अन्यत्र चली गई। बिराज फिर एक बार अपने लोहे के पलंग पर लौट आकर शीशा लेकर बैठी। अपने मुख के प्रतिबिम्ब की ओर देखते ही एक असीम घृणा से उसका मुँह अपने आप विमुख हो गया। दर्पण को फेंककर बिछौने में मुँह छिपाकर वह गंभीर आर्त्तस्वर कर उठी। उसका सिर मुँड़ा हुआ है—उसके वे आकाश में छाये बादलों के समान काले केश कहाँ हैं ? उसके सारे मुख को इस तरह क्षत-विक्षत किसने कर दिया ? वह कमलदल सदृश विशाल आँखें कहाँ गईं ? वह अतुलनीय कुंदन-सा रंग किसने हर लिया ? भगवान् ! यह कैसा भारी दण्ड तुमने दिया ! अगर कभी भेंट हो गई तो यह मुख कैसे सामने करेगी ? जितने दिन तक इस देह में प्राण रहते हैं, उतने दिन तक आशा एकदम निर्मूल होकर नहीं मरती। इसी से शायद अत्यन्त क्षीण, थोड़ी-सी आशा, अन्तः

सलिला नदी की तरह, अत्यन्त गुप्त अन्तस्तल में उस समय भी वह रही थी। हे दयामय ! उसे सुखा देकर—नष्ट करके—तुमको क्या मिला ?

ज्ञान लौट आने के बाद रोग शय्या में लेटे लेटे जब स्वामी का मुख उसे उज्ज्वल होकर दिखाई देता था, तब कभी-कभी सहसा खयाल होता था कि मैंने जो कुछ किया है, वह तो अज्ञान अवस्था में ही किया है, तो क्या वह अपराध क्षमा नहीं हो सकता ? सब पापों का प्रायश्चित है, क्या केवल इसी का नहीं है ? अन्तर्यामी तो जानते हैं, यथार्थ पाप मैंने नहीं किया; तथापि जो कुछ किया है, वह क्या इतने दिनों तक जो स्वामी की सेवा की है, उससे नहीं धो-पुँछ जायगा ? बीच-बीच में कहती थी कि उनके मन में तो क्रोध नहीं टिकता, अगर एकाएक पैरों पर जाकर गिर पड़ूँ और सब कुछ खोलकर कह दूँ तो वह मेरे मुँह की ओर देखकर क्या करेंगे ? ऐसा होने पर वह संभवत: क्या करेंगे, इस कल्पना को कितने रंगों से, कितनी तरह से रँगकर, सँवारकर देखने के लिए वह रात-रात भर जागकर बिता देती थी; नींद आने पर उठ जाती, पानी से आँखें और मुँह धोती और फिर नये सिरे से इसी प्रसंग को सोचने बैठती थी। हाय भगवान् ! उसके उस विचित्र चित्त को क्यों इस तरह दोनों पैरों से रौंदकर तुमने चूर-चूर कर दिया ? वह अपने स्वामी के पैरों पर औंधी गिरकर लज्जा के मारे अब यह मुँह उठाकर उनके मुँह की ओर कैसे देखेगी ?

उस कमरे में एक और बीमार स्त्री थी। विराज को इस तरह रोते देखकर उठकर पास आ गई और विस्मय के स्वर में पूछने लगी—क्या हुआ जी ? क्यों रोती हो ?

हाय रे ! और एक आदमी बिराज के रोने का कारण जानना चाहता है !

बिराज ने चटपट आँखें पोंछ डालीं और किसी ओर दृष्टिपात न करके वह धीरे-से बाहर निकल गई।

उस दिन लोगों की भीड़-भाड़ से भरी और उनके बोल-चाल से गूँज रही सड़क के एक किनारे होकर जब उसने अपने अनभ्यस्त क्लान्त दोनों पैरों को सारे जीवन की उद्देशहीन अनिश्चित यात्रा के लिए आगे बढ़ाया, तब उसकी छाती को चीरकर एक लम्बी साँस बाहर निकल आई। उसने

मन-ही-मन कहा—भगवान् ! शायद तुमने यह अच्छा ही किया। अब कोई इधर आँख उठाकर भी नहीं देखेगा—यह मुख और ये आँखें शायद इसी यात्रा के योग्य हैं। गाँव के लोगों ने जाना है कि वह गृहत्यागिनी कुलटा है। इसीसे उसके लिए यह मुख उठाकर अपने गाँव का मुख, अपने स्वामी का मुख देखना निषिद्ध हो गया है। शायद इस मुख का ऐसा हो जाना ही तुम्हारा मंगलमय विधान है ईश्वर !—विराज रास्ते पर चलने लगी।

१६

कितने ही दिन बीत गये। विराज पहले दासीवृत्ति करने गई थी; किन्तु उसकी टूटी हुई देह काम न कर सकी, गृहस्थ ने विदा कर दिया। तब से भिक्षा ही उसकी उपजीविका है। वह राह-राह भीख माँगती है, वृक्ष के नीचे पकाकर खा लेती है और पेड़ के नीचे ही पड़ रहती है। इस वर्तमान जीवन में उसके पिछले जीवन का रत्ती भर भी चिह्न मौजूद नहीं है। उसके शरीर पर शतछिन्न वस्त्र, जटा बने हुए थोड़े-से रूखे बाल, भिक्षा में मिली हुई एक मैली कथरी है। इस समय वैसी ही उसकी देह है, वैसा ही वर्ण है, वैसा ही सब है। अथ च, अभी उसकी अवस्था केवल पचीस वर्ष की है। एक दिन इसी देह की तुलना स्वर्ग में भी नहीं मिलती थी ! अतीत से तोड़कर, अलग करके, भगवान् ने जैसे उसे एकदम नये सिरे से गढ़ दिया है। वह आप भी सब भूल गई है। भूल नहीं सकी केवल दो बातें। एक तो कुछ माँगते समय 'दो' कहने में उसका मुँह लाल हो जाता है, आज भी यह शब्द उसके गले से स्पष्ट नहीं निकल पाता और दूसरी बात यह नहीं भूलती कि उसे बहुत दूर जाकर मरना होगा। मरने का यह स्थान किस देशान्तर में है—यह अवश्य वह नहीं जानती, किन्तु यह जानती है कि उस सुदूर स्थान पर पहुँचने के लिए ही वह लगातार राह चल रही है। वह किसी तरह अपनी यह दशा स्वामी को नहीं दिखा सकेगी, और उसका अपना दोष चाहे जितना अप्रमेय हो, उसकी यह अवस्था आँख से देखकर स्वामी की छाती फट जायगी, यह एक घड़ी के

लिए भी भूल न पाने के कारण वह निरन्तर दूर हटती जा रही थी।

वह एक वर्ष से बराबर राह चल रही है; लेकिन उसका वह अपरिचित गम्य स्थान कहाँ है ? कहाँ, किस भूमि-शय्या पर, इस लज्जाहत तप्त मस्तक को डालकर इस लांछित जीवन को चुपचाप समाप्त कर पावेगी ? आज दो दिन से वह एक वृक्ष के नीचे पड़ी है, उठ नहीं सकी।

फिर धीरे-धीरे रोग ने घेर लिया है—खाँसी, बुखार, छाती में दर्द। दुर्बल देह से कड़ी बीमारी में पड़कर अस्पताल गई थी; अच्छी होते न होते यह पथश्रम, अनशन और आधा पेट भोजन। उसकी देह बहुत सबल थी, इसी से अब तक टिकी है किन्तु अब जान पड़ता है, नहीं टिकेगी। आज आँखें मूँदकर सोच रही थी कि यह वृक्ष-तल ही क्या वह गम्य स्थान है ? इसी के लिए क्या वह इतने देश घूमी है, इतना रास्ता, विश्राम किये बिना चली है ? अब क्या वह न उठेगी ?

दिन समाप्त हो गया, वृक्ष की सबसे ऊँची चोटी पर से अस्तोन्मुख सूर्य की अन्तिम लाल आभा कहीं हट गई। सन्ध्या की शंखध्वनि गाँव के भीतर से उड़ती हुई आकर उसके कानों में पड़ी। उसी के साथ उसकी बन्द आँखों के सामने अपरिचित गृहस्थ-वधुओं की शान्त मंगल-मूर्तियाँ नाच उठीं। इस समय कौन क्या कर रही है, किस तरह दीपक जलाती है, हाथ में दीपक लेकर कहाँ-कहाँ दिखाती फिरती है, अब गले में आँचल डालकर प्रणाम करती है, तुलसी चौंतरे पर दीपक रखकर भगवान् के चरणों में कौन क्या कामना-निवेदन कर रही है, यह सब कुछ वह आँखों से देखने लगी और कानों से सुनने लगी। आज बहुत दिनों के बाद उसकी आँखों में आँसू आये। जैसे कितने ही हज़ार वर्ष बीत गये हैं, वह किसी घर में संध्या का दीपक न जला सकी, किसी के मुख को स्मरण करके भगवान् के चरणों में उसकी आयु और ऐश्वर्य के लिए प्रार्थना नहीं कर सकी। इन सब चिन्ताओं को वह प्राणपण से दूर रखती थी; किन्तु आज न रख सकी। शंख के आह्वान से उसका क्षुधित-तृषित हृदय, कोई निषेध न मानकर, गृहस्थ-वन्धुओं बीच में जाकर खड़ा हो गया। उसके मन की आँखों में हरएक घर-द्वार, हरएक आँगन-सहन, पक्का तुलसी-चौरा, हरएक दीपक तक एक हो गया—यह तो सब ही उसका जाना-पहचाना है; इन सभी

में तो इस समय उसी के हाथ के चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं। फिर उसे दुःख नहीं रहा, भूख-प्यास नहीं रही, पीड़ा की यातना नहीं रही। वह तन्मय होकर मन-ही-मन निरन्तर उन बहुओं के पीछे-पीछे घूमने लगी। जब वे चौके में रसोई बनाने गईं, तो वह उनके साथ गई। रसोई बनाकर अपने स्वामियों को भोजन परोसा, तो उसने आँखें खोलकर ताका। उसके बाद सब काम-धन्धा समाप्त करके बहुत रात बीते जब वे निद्रित पतियों की सेज के पास आकर खड़ी हुईं, वह भी पास खड़े होने के लिए काँप उठी— यह तो उसी के स्वामी हैं! फिर उसकी आँखों की पलक नहीं लगी, एकटक सोये हुए स्वामी के मुख की ओर ताकते रहकर सारी रात काट दी। जबसे घर छोड़ा, ऐसी एक भी तो रात उसके पास नहीं आई! आज उसके भाग्य में यह कैसा असह्य सुख है! निद्रा के जागरण में, तन्द्रा के स्वप्न में, यह कैसा मधुर निशा-यापन है! बिराज चंचल होकर उठ बैठी। उस समय भी पूर्व का आकाश स्वच्छ नहीं हुआ था, उस समय भी दूर पर चाँदनी शाखाओं और पत्तियों की सन्धियों से उतरकर वृक्ष के नीचे उसके चारों ओर, हरसिंगार के फूलों की तरह झड़ रही थी। वह सोच रही थी कि अगर मैं असती हूँ तो आज वह क्यों इस तरह उसे दिखाई दिये? क्या वह यही जता गये हैं कि उसके पाप का प्रायश्चित पूरा हो गया है? तब तो एक घड़ी भी वह कहीं बिलम्ब नहीं कर सकेगी। वह उद्ग्रीव होकर सवेरा होने की राह देखने लगी। आज की रात सहसा उसकी रुँधी हुई दृष्टि को ज़ोर से खोलकर सारे हृदय को आनन्द और माधुर्य से भर गई! अब पति से भेंट हो या न हो, अब तो कोई उसे एक पल के लिए भी उनसे अलग करके नहीं रख सकेगा! इस तरह उन्हें पाने की राह थी, फिर भी वह वृथा इतने दिन तक उनसे छूटी हुई होकर दु.ख पाती रही। यह त्रुटि, यह गलती उसे गहरी वेदना से बार-बार काँटे की तरह खटकने लगी। आज न जाने किस तरह उसे पक्का विश्वास हो गया है कि वह उसे बुला रहे हैं।

बिराज ने दृढ़ कण्ठ से कहा—ठीक तो है, यह देह क्या मेरी अपनी है, जो उनकी अनुमति से बिना इसे इस तरह नष्ट कर रही हूँ! बिचार करने का अधिकार मेरा नहीं, उनका है। जो करने का है, वही करेंगे, मैं सब बातें

उनके चरणों में निवेदन करके छुट्टी पाऊँगी। बिराज लौट पड़ी।

आज उसकी देह हल्की थी, उसके पैर जैसे कड़ी मिट्टी पर नहीं पड़ रहे थे। मन उसका परिपूर्ण था, उसमें कहीं ज़रा-सी भी ग्लानि न थी। चलते-चलते वह वार-वार आवृत्ति करने लगी कि उसकी यह कैसी भयानक भूल थी! यह कैसा अहकार उसके सिर पर सवार हो गया था; यह कुरूप कुत्सित मुख दुनिया भर के सामने वाहर करने में तो लज्जा न हुई, लज्जा हुई केवल उनके निकट जिनके आगे प्रकाश करने का एक मात्र अधिकार उसकी नव वर्ष की अवस्था में विधाता ने स्वयं निर्दिष्ट कर दिया था।

१७

पूँटी अपने दादा को घड़ी भर भी विश्राम नहीं लेने देती। पूजा के दिनों से लेकर पूस के अन्त तक निरन्तर एक शहर से दूसरे शहर को, एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ को, उसे खींचे लिए जा रही है। उसकी उम्र अभी थोड़ी है, देह सुस्थ और सवल है, कौतूहल भी असीम है। उसके साथ वराबर पैर बढ़ाये चलना नीलांवर के बूते के वाहर है। वह थक गया है। अथ च, यह भी वह समझ नहीं पाता कि कहीं बैठकर कुछ विश्राम कर लेने की इच्छा उसे क्यों नहीं होती? क्यों उसकी सारी देह अपने घर की ओर उन्मुख होकर दिन-रात भाग-भाग किया करती है? क्यों उसका भारा-क्रान्त मन अपने देश—अपने गाँव लौटने के लिए दिन-रात रो-रोकर फर्याद करता है? देश में या गाँव में क्या है? ऐसे स्वास्थ्यकर स्थान में मन क्यों नहीं लगता? छोटी वहू वीच-वीच में पूँटी को चिट्ठी लिखती है, उसमें भी कोई ऐसी वात नहीं रहती, तो भी उसी वन-जंगल के लगातार आकर्षण से उसकी शीर्ण देह कंकालसार होने लगी। पूँटी चाहती है कि दादा सब भूलकर फिर वैसे ही हो जायँ। वैसे ही स्वस्थ, सदा प्रसन्न, वैसे ही हरघड़ी गाते-गुनगुनाते, वैसे ही कारण-अकारण खुलकर ज़ोर से हँसने के अक्षय भांडार। लेकिन दादा उसकी सारी कोशिश को निष्फल बना रहे हैं। पहले पूँटी ने ऐसा नहीं सोचा था। वह हताश नहीं हुई थी। समझती थी, और दो दिन बीतें, सब ठीक हो

जायगा, किन्तु दो-दो दिन करके चार-पाँच महीने वीत गये, कहाँ, कुछ भी तो न हुआ ! घर छोड़कर आने के दिन मोहिनी की वातों से, व्यवहार से, विराज के ऊपर उसके मन में एक करुणा का भाव जाग उठा था; उसकी वातों पर विश्वास भी किया था। यदि उसका दादा ठीक हो जाता तो वचपन की वातें याद करके वह शायद मन-ही-मन विराज को सम्पूर्ण रूप से क्षमा भी कर सकती। वास्तव में क्षमा भी करने के लिए, उसी भाभी को थोड़े मधुर-भाव से स्मरण करने के लिए एक समय वह आप भी व्याकुल हुई थी, लेकिन वह सुयोग उसे मिलता कहाँ है ? दादा कहाँ ठीक होते हैं ? एक तो संसार में ऐसे किसी दुःख की, ऐसे किसी कारण की वह कल्पना ही नहीं कर सकती, जिससे इस आदमी को इतने दुःख में डालकर कोई हटकर खड़ा हो सकता है। भाभी भली हो या वुरी, अव पूँटी उधर भ्रूक्षेप भी नहीं करती; किन्तु उसके दादा को त्यागकर जाने के अक्षम्य अपराध की जो स्त्री अपराधिनी है, उसके प्रति पूँटी के विद्वेष की भी जैसे सीमा नहीं रही, वैसे ही, उस अभागिनी को हरघड़ी स्मरण करके, उसके वियोग को इस तरह मन में पाल कर जो आदमी अपने को इस तरह तिल-तिल क्षय करता जा रहा है, उसके ऊपर भी उसका चित्त प्रसन्न नहीं हुआ।

एक दिन सवेरे वह मुँह फुलाये आकर वोली—दादा, चलो, घर चलें।

नीलांवर ने कुछ विस्मित होकर ही वहन के मुँह की ओर देखा। कारण, माघ का महिना प्रयाग में विताने की वात हुई थी। पूँटी ने दादा के मन का भाव समझकर कहा—एक दिन भी अव रहना नहीं चाहती, कल ही जाऊँगी।

उसके रुष्ट-भाव को देखकर नीलांवर ने ज़रा विषाद की हँसी-हँसकर कहा—क्यों रे पूँटी, क्या वात है ?

पूँटी ने अव तक ज़ोर करके आँसू दवा रखे थे, अव रो पड़ी। अश्रु-विकृत स्वर में वोली—रहकर क्या होगा ? तुम्हें यहाँ अच्छा नहीं लगता, तुम जाऊँ-जाऊँ करके प्रतिदिन सूखते जा रहे हो। ना, मैं किसी तरह एक दिन भी नहीं रहूँगी।

नीलांबर ने स्नेह से हाथ पकड़कर, खींचकर, पास बिठाकर कहा—

लौट जाने से ही क्या मैं अच्छा हो जाऊँगा रे ? इस देह के ठीक होने की आशा अव मैं नहीं करता पूँटी—इससे चल बहिन, जो होना हो, वह घर जाकर वहीं हो।

दादा की वात सुनकर पूँटी और अधिक रोती हुई वोली—तुम क्यों उसे हमेशा इस तरह याद किया करते हो ? सिर्फ सोच-सोचकर ही तो तुम ऐसे हुए जा रहे हो।

तुझसे किसने कहा कि मैं उसे हमेशा याद करता हूँ ?

पूँटी ने उसी तरह जवाब दिया—कहेगा और कौन ? मैं खुद ही जानती हूँ।

नीलांवर ने कहा—तू उसे नहीं याद करती ?

पूँटी ने आँसू पोंछकर उद्धत-भाव से कहा—ना, नहीं याद करती। उसे याद करने से पाप होता है।

नीलांवर चौंक पड़ा—क्या होता है ?

पाप होता है। उसका नाम लेने से मुँह अपवित्र होता है, स्नान करना पड़ता है। कहते-कहते उसने विस्मय के साथ देखा, दादा की स्नेह से कोमल दृष्टि पल-भर में वदल गई है। नीलांवर ने वहन के मुँह की ओर देखकर कठिन स्वर में कहा—पूँटी !

सुनकर वह डर गई और अत्यन्त कुंठित हो पड़ी। वह दादा की वड़ी दुलारी वहन है। बचपन से ही हज़ार अपराध करने पर भी कभी उसने दादा की ऐसी आँख नहीं देखीं, ऐसा स्वर नहीं सुना। इतनी बड़ी अवस्था में झिड़की खाकर क्षोभ और अभिमान से उसका सिर झुक गया।

नीलांवर और कुछ न कहकर जब वहाँ से उठ गया तब पूँटी आँखों में आँचल देकर फफककर रोने लगी। दोपहर को दादा के भोजन के समय पास नहीं गई। तीसरे पहर दासी के हाथ खाने की सामग्री भेजकर आप आड़ में खड़ी रही।

नीलांवर ने न तो बुलाया और न बात ही की।

शाम हो चुकी है। नीलांवर संध्या-जप आदि आह्निक समाप्त करके पूजा के आसन पर ही चुपचाप वैठा है। पूँटी ने चुपके से पीछे आकर घुटने टेककर दादा की पीठ पर मुँह रख दिया। उसका दादा से नालिश करने

का यही तरीका है। वचपन में अपराध करके, भाभी से डाँट खाकर, वह इसी तरह आकर फर्याद करती थी। नीलांवर को सहसा यह स्मरण हो आया और उसकी आँखें गीली हो उठीं। पूँटी के सिर पर हाथ रखकर कोमल स्वर में उसने कहा—क्या है रे ?

पूँटी पीठ छोड़कर वालक की तरह दादा की गोद में औंधी गिरकर मुँह छिपाकर रोने लगी। नीलांवर उसके सिर पर एक हाथ रखकर चुप-चाप बैठा रहा। वहुत देर वाद पूँटी ने रुआँसी आवाज़ में कहा—अव कभी न कहूँगी दादा !

नीलांबर हाथ से उसके केशों को इधर-उधर करता हुआ बोला—ना, अव कभी न कहना।

पूँटी चुप होकर वैसे ही पड़ी रही।

उसके मन की वात समझकर नीलांवर ने कोमल स्वर में कहा—वह तेरी वड़ी है—गुरुजन है।—केवल नाते में ही नहीं पूँटी, उसने तुझे माँ की तरह पाला-पोसा है और तेरी माता के समान हो गई है। और लोग जो चाहे कहें, लेकिन तेरे मुँह से यह बात निकलना घोर अपराध है। पूँटी ने आँखें पोंछते-पोंछते कहा—वह क्यों हम लोगों को इस तरह छोड़कर चली गई ?

वह क्यों गई पूँटी, सो केवल मैं जानता हूँ और जो सब के अन्तर्यामी हैं, वह जानते हैं। वह आप भी नहीं जानती थी—उस समय वह पागल हो गई थी। उसको ज़रा भी ज्ञान या होश होता तो वह आत्महत्या ही करती, यह काम न करती।

पूँटी ने और एक वार आँखें पोंछकर उखड़ी हुई आवाज़ में कहा—तो अव क्यों नहीं वह आती दादा ?

क्यों नहीं आती ? आने का उपाय नहीं है वहन, इसी से नहीं आती। इतना कहकर, जोर करके अपने को सँभालकर क्षणभर बाद ही उसने कहा—जिस अवस्था में वह मुझे छोड़कर गई है, अगर उसके लौटने की ज़रा-सी भी राह रहती तो वह लौट आती—एक दिन भी कहीं नहीं रहती। यह वात क्या तू आप ही नहीं समझती पूँटी ?

पूँटी ने मुँह छिपाये रहकर ही गर्दन हिलाकर कहा—समझती हूँ

दादा—

नीलांबर ने जोश में आकर कहा—तो यही कह बहन। वह आना चाहती है, आने नहीं पाती। यह कैसा दण्ड है पूंटी, सो तुम लोग अवश्य नहीं देख पाते, लेकिन मैं आँखें मूंदते ही देख पाता हूँ। वह देखना ही नित्य मुझे खाये डाल रहा है और कुछ नहीं।

पूंटी फिर रो पड़ी।

नीलांबर ने हाथ से अपनी आँखें पोंछकर कहा—वह अपनी साध की—कामना की—दो बातें जब तब मुझ से कहा करती थी। एक साध यह कि अन्त समय वह मेरी गोद में सिर रख सके और दूसरी साध यह कि सीता सावित्री की तरह होकर मरने के बाद उन्हीं सतियों के पास जाय। अभागिन की सभी साधें मिट गईं।

पूंटी चुप होकर सुनने लगी।

नीलांबर आँसुओं से रुंधे गले को साफ करके बोला—तुम सभी उसे अपराध लगाते हो। मना नहीं कर पाता, इससे मैं भी चुप रहता हूँ। लेकिन बता, भगवान् को कैसे धोखा दूं? वह तो देखते हैं कि किसकी भूल, किसके अपराध का बोझा सिर पर लादकर वह डूब गई। तू ही कह, मैं किस मुंह से उसे दोष दूं! मैं उसे आशीर्वाद दिये बिना कैसे रहूँ! नहीं बहन, संसार की नजर में वह चाहे जितनी कलंकिनी हो, उसके खिलाफ मेरा कोई क्षोभ, कोई शिकायत नहीं है। इस जन्म में उसे पाकर भी अपने दोष से मैंने गँवा दिया, भगवान् करें, अगले जन्म में भी मैं उसे पाऊँ।

वह आगे कुछ कह न सका, यहीं पर उसका गला एकदम रुंध गया। पूंटी ने जल्दी से उठकर आँचल से दादा के आँसू पोंछते-पोंछते आप भी रो दिया। सहसा उसे जान पड़ा कि दादा जैसे कहीं हटते जा रहे हैं। रोकर कहा—जहाँ इच्छा हो वहाँ चलो दादा, लेकिन मैं तुमको एक दिन के लिए भी कहीं अकेला नहीं छोड़ सकती, नहीं छोड़ूंगी।

नीलांबर सिर उठाकर ज़रा हँसा।

बिराज जगन्नाथपुरी की राह पर लौटी आ रही थी। इसी राह को पकड़कर जब वह अनुद्दिष्ट मृत्युशय्या की खोज में गई थी, तब के उस जाने में और अब इस आने में कितना अन्तर है! अब वह अपने घर जा रही

है। उसकी दुर्बल देह राह में जितना ही कातर होकर विश्राम की भिक्षा माँगने लगी, उसे अपनी देह पर उतना ही क्रोध और खीझ आने लगी। वह किसी भी कारण से कहीं भी विलंब करने को राजी नहीं। उसकी खाँसी यक्ष्मा में परिवर्तित हो गई है, यह उसे मालूम हो गया है। इसी से आशंका की सीमा नहीं थी कि कहीं वह वहाँ तक न पहुँच पावे! लड़कपन से ही उसे यह पक्का विश्वास था कि शरीर निष्पाप न हो तो कोई अपने स्वामी के चरणों में प्राणत्याग नहीं कर पाती। वह इसी उपाय से मरने के पहले एक बार अपने शरीर की परख कर लेना चाहती है—उसका प्रायश्चित्त सम्पूर्ण हुआ कि नहीं। इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकने पर वह निर्भय होकर बड़े आनन्द से जीवन के उस किनारे पर खड़ी होकर उनकी राह देखती बैठी रहेगी। किन्तु दामोदर नद के इस पार आकर उसके हाथों और पैरों में वरम आ गया, मुँह से अधिक मात्रा में खून जाने लगा। अब आगे किसी तरह पैरों में चलने की ताब नहीं रही। वह हताश होकर एक वृक्ष के तले लौटकर भय से रोने लगी। यह कैसा भयानक अपराध है, जो इतना करके भी उसकी अन्तिम आशा पूरी नहीं हुई! उसका यह जन्म तो गया, दूसरे जन्म में भी आशा नहीं रही, तब वह और क्या करेगी? आशा नहीं है, तो भी वह वृक्ष के तले पड़कर सारे दिन हाथ जोड़कर स्वामी के चरणों में प्रार्थना करने लगी।

दूसरे दिन तारकेश्वर के आसपास कहीं बाज़ार लगने का दिन था। सवेरे से ही उस सड़क पर बैलगाड़ियाँ चलने लगीं। उसने हिम्मत करके एक बूढ़े गाड़ीवान से प्रार्थना की। बूढ़ा गाड़ीवान उसका रोना देखकर राज़ी हो गया और उसे अपनी गाड़ी पर चढ़ाकर तारकेश्वर पहुँचा गया। विराज ने निश्चय किया कि मंदिर के आसपास ही कहीं वह पड़ी रहेगी। यहाँ कितने ही लोग आते-जाते रहते हैं। शायद किसी उपाय से वह एक बार छोटी बहू के पास खबर भेज सके।

कितने ही नर-नारी, कठिन व्याधियों से पीड़ित कितनी ही कामनाएँ करके, इस देवमन्दिर को घेरकर इधर-उधर पड़े हुए हैं। उन्हीं के बीच आकर विराज ने बहुत दिनों के बाद कुछ शान्ति का अनुभव किया। उनकी तरह उसके भी व्याधि है, कामना है। वह उसी को लेकर यहाँ चुपचाप पड़ी

रह सकेगी, किसी की भी दृष्टि आकृष्ट नहीं करेगी, किसी का भी अर्थहीन कौतूहल चरितार्थ न होगा—यह सोचकर इतने दुःख में भी उसे आराम मिला। लेकिन रोग तेजी के साथ बढ़ने लगा। माघ के इस दुर्जय जाड़े में बिना कुछ खाये-पिये छः दिन बीत गये; किन्तु अब और भी दिन कट जायँगे, ऐसी आशा नहीं रही, कोई आवेगा—यह भी भरोसा नहीं रहा। भरोसा रहा केवल मृत्यु का। वह उसी के लिए फिर एक बार अपने को तैयार करने लगी।

उस दिन आकाश में बादल छाये हुए थे। तीसरा पहर होते-न-होते ही अँधेरा जान पड़ने लगा। सवेरे उसके मुँह से बहुत-सा रक्त निकल जाने के कारण, उसकी मृतकल्प देह मानों एकदम निःशेष हो गई थी। उसने मन ही मन कहा—जान पड़ता है, आज ही सब समाप्त हो जायेगा। तभी से वह मन्दिर के पीछे मुँह डाले पड़ी थी। दोपहर को देवता की पूजा हो चुकने पर वह और दिनों की तरह उठकर बैठकर प्रणाम नहीं कर सकी—मन ही मन प्रणाम कर लिया। इतने दिन वह स्वामी के चरणों में केवल विनती ही करती आ रही है। वह अबोध नहीं है। जो काम उसने कर डाला है, उससे इस जन्म पर उसका कोई दावा नहीं रहा, केवल यही उसने चाहा है कि उसका अगले जन्म का अधिकार न जाय, समझे-बूझे बिना अपराध करने का दण्ड इस जन्म को लाँघकर दूसरे जन्म तक व्याप्त न हो सके—यही भिक्षा उसने माँगी है। किन्तु आज दिन का अन्त होने के साथ-साथ उसकी चिन्ता-धारा सहसा एक आश्चर्य मार्ग में मुड़ गई। वह भिक्षा का भाव नहीं रहा; विद्रोह का भाव दिखाई पड़ा। उसके सारे चित्त में भरकर एक अपूर्व अभिमान का सुर अनिर्वचनीय माधुर्य से बज उठा। वह उसी में मग्न होकर मन-ही-मन केवल यही कहने लगी—तो फिर तुमने क्यों कहा था ?

उसे मालूम नहीं हुआ कि कब उसका अपंग बायाँ हाथ गिरकर परि-क्रमा की राह में फैल गया है। सहसा उसी हाथ पर एक कठिन व्यथा पाकर वह अस्फुट स्वर में कातरोक्ति कर उठी—उसके मुँह से 'आह' का शब्द निकल गया। यह आने-जाने की राह थी। जिस आदमी ने न देखकर इस अवश शीर्ण हाथ को अनजान में कुचल दिया था, उसने अत्यन्त लज्जित

और व्यथित होकर, घूमकर खड़े होकर, कहा—हाय-हाय ! कौन इस तरह राह में पड़ा हुआ है ! मुझसे वड़ा अन्याय हुआ—अधिक चोट तो नहीं लगी !

विराज ने फौरन् मुँह से कपड़ा हटाकर देखा, इसके वाद और एक अस्फुट शब्द करके वह चुप हो गई। यह आदमी नीलांवर था। वह एक वार जरा झुककर देखने के वाद हट गया।

कुछ देर में सूर्य अस्त हो गये। पश्चिम के क्षितिज पर वादल न थे। दिगन्त-मण्डल से निकली और विखरी हुई सूर्यकिरणों की सुनहली आभा मन्दिर के कलश पर पेड़ की चोटी पर फैल गई थी। नीलांबर ने दूर खड़े होकर पूंटी से कहा—उस वीमार स्त्री को मैंने जोर से कुचल दिया है वहन ! देख तो अगर उसे कुछ दे सके—जान पड़ता है, कोई भिखारिन है।

पूंटी ने देखा, वह स्त्री एकटक उन्हीं की ओर ताक रही है। तव वह धीरे से पास जाकर खड़ी हो गई। उसके मुख का कुछ हिस्सा कपड़े से ढँका था, तो भी जान पड़ा उसने यह मुख पहले कभी देखा है। पूछा—हाँ जी, तुम्हारा घर कहाँ है ?

'सप्तग्राम में,' कहकर वह स्त्री हँसी।

विराज की सवसे सुन्दर चीज थी उसके मुख की हँसी। इस हँसी को समस्त संसार में कोई भी नहीं भूल सकता था।

"अरे यह तो भाभी हैं !" कहकर पूंटी उसी घड़ी उस जीर्ण-शीर्ण देह के ऊपर औंधी पड़कर मुँह पर मुँह रखकर रो उठी।

नीलांवर दूर पर खड़ा देख रहा था। वातचीत न सुनकर भी सब समझ गया। एक वार विराज को सिर से पैर तक देखा, उसके वाद शान्त स्वर से कहा—यहाँ न रो पूंटी, उठ। इतना कहकर, वहन को अलग हटाकर, स्त्री की जीर्ण देह को छोटे वच्चे की तरह उठाकर छाती से लगाये हुए तेज चाल से अपने डेरे की ओर चला गया।

चिकित्सा के लिए, उत्तम स्वास्थ्यकर स्थान में जाने के लिए, विराज से बहुत कुछ कहा गया, खुशामद की गई, किन्तु किसी तरह उसे राजी नहीं किया जा सका। घर छोड़कर जाने को वह किसी तरह राज़ी नहीं हुई।

नीलांवर ने पूंटी को आड़ में बुलाकर कहा—और कितने दिन हैं

वहन ? जहाँ जिस तरह रहना चाहे, रहने दे । अब तुम उसे और दिक़ न करो ।

तारकेश्वर में स्वामी की गोद में सिर रखकर उसने पहले यही आवेदन किया था कि उसे घर ले चलो, उसकी अपनी शय्या पर सुला दो। घर के ऊपर, घर की हर एक सामग्री पर और स्वामी के ऊपर उसकी कैसी उत्कट तृष्णा है, इस वात को जो कोई आँखों से देखता, वही उसका अनुभव करके रो देता । दिन-रात के अधिकांश समय में ही विराज बुखार से वेहोश-सी पड़ी रहती है; किन्तु थोड़ा-सा सजग होते ही घर की हर एक चीज़ को ग़ौर से ताका करती है।

नीलांवर उसकी शय्या को छोड़कर प्रायः ही कहीं नहीं जाता और प्रायः ही आँखों में आँसू भरे हुए प्रार्थना करता है कि भगवान्, तुमने वहुत दण्ड दिया, अब क्षमा करो। जो मनुष्य परलोक जाने की तैयारी कर चुका है, उसके इस लोक के माया-मोह का वंधन काट दो ।

गृहत्यागिनी का गृह के ऊपर यह उत्कट आकर्षण देखकर नीलांवर मन-ही-मन कंटकित हो उठता है। दो सप्ताह बीत गये। कल से घोर विकार के लक्षण प्रकट होने लगे हैं। आज दिन भर प्रलाप करके कुछ देर पहले वह सो गई थी । संध्या के बाद उसने आँखें खोलकर देखा। पूंटी रोते-रोते उसके पैरों के पास पड़कर सो रही है । छोटी वहू सिरहाने के पास बैठी है। उसे देखकर विराज ने कहा—छोटी वहू है न ?

छोटी बहू ने उसके मुँह पर झुककर कहा—हाँ जीजी, मैं मोहिनी हूँ ।

पूंटी कहाँ है ?

छोटी वहू ने हाथ से दिखाकर कहा—तुम्हारे पैरों के पास सो रही है।

वह कहाँ हैं ?

छोटी बहू ने कहा—उस तरफ संध्या-पूजा कर रहे हैं !

'तो फिर मैं भी करूँ' कहकर वह आँखें मूंदकर मन-ही-मन जप करने लगी। वहुत देर बाद दाहिना हाथ माथे से छुआकर प्रणाम किया । इसके वाद छोटी बहू के मुँह की ओर क्षणभर चुपचाप ताकती रही, फिर धीरे-धीरे बोली—जान पड़ता है, आज ही जा रही हूँ बहन, लेकिन मेरी कामना यही है कि फिर दूसरे जन्म में तुम से भेंट हो, फिर तुम्हें इसी तरह अपने

निकट पाऊँ।

कल से ही सब लोगों को मालूम हो गया था कि विराज का जीवन बिल्कुल समाप्त हो आया है, इस समय उसकी बात सुनकर छोटी बहू चुपचाप रोने लगी।

विराज अब खूब होश में है। उसने गले को और भी धीमा करके चुपके चुपके कहा—छोटी बहू, सुन्दरी को एक बार बुला सकती है ?

छोटी बहू ने रुँधी हुई साँस से कहा—अब उसे क्यों बुलाती हो जीजी ? वह नहीं आवेगी।

विराज ने कहा—आवेगी री आवेगी। एक बार बुला भेजो। मैं उसे क्षमा करके आशीर्वाद दे जाऊँ। अब मुझे किसी के ऊपर क्रोध नहीं है, किसी के प्रति कोई क्षोभ नहीं है। भगवान् ने जब क्षमा करके मेरे स्वामी को लौटा दिया है, तब मैं भी सभी को क्षमा करके जाना चाहती हूँ।

छोटी बहू ने रोते-रोते कहा—यह भगवान् की क्षमा क्या है जीजी ? बिना अपराध के इतना दण्ड देकर भी उनकी मनोकामना पूरी नहीं हुई—वह तुमको भी उठा ले जाना चाहते हैं। एक हाथ ले लिया, तो भी अगर तुम्हें हम लोगों के पास छोड़ देते···।

विराज हँस उठी। बोली—मुझे लेकर तुम क्या करतीं ? गाँव मोहल्ले में बदनामी हो गई है—मेरे जीते रहने में तो अब कोई लाभ नहीं है बहन !

छोटी बहू जोर देकर कह उठी—लाभ है जीजी ! इसके सिवा वह तो झूठी बदनामी है—उसको हम लोग नहीं डरते।

बिराज ने कहा—तुम लोग नहीं डरते, मगर मैं डरती हूँ। बदनामी झूठी नहीं है, बिल्कुल सच है। मेरा अपराध चाहे जितना थोड़ा हुआ हो छोटी बहू, उसके बाद हिन्दू घर की स्त्री का जीवित रहना ठीक नहीं। तुम कहती हो कि भगवान् के दया नहीं है; किन्तु···।

उसकी बात पूरी होने के पहले ही पूंटी उमड़ी हुई रुलाई के स्वर में चिल्ला उठी—ओह, भगवान् की बड़ी दया है !

अब तक वह चुपके-चुपके रो रही थी और सुन रही थी। अब उससे बर्दाश्त न हो सका और वह इस तरह चिल्ला उठी। रोकर फिर बोली—

उनकी ज़रा-सी भी दया नहीं है, उनके ज़रा-सा भी विचार नहीं है। जो असल पापी हैं, उनको कुछ नहीं हुआ—और हम लोगों को ही वह इस तरह दण्ड दे रहे हैं।

उसके रोने की ओर ताककर विराज चुपचाप हँसने लगी। वह हँसी कैसी मधुर, कैसी हृदयविदारक थी ! उसके बाद बनावटी क्रोध के स्वर में बोली—चुप हो कलमँहीं, चिल्ला नहीं।

पूँटी दौड़ आकर उसके गले से लिपटकर जोर से रो उठी—तुम मरो नहीं भाभी, हम सह नहीं सकेंगे ! तुम दवा खाओ—और कहीं चलो—तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ भाभी, और कुछ दिन जियो।

पूँटी के रोने का शब्द सुनकर, आह्निक बीच ही में छोड़कर, नीलांबर तेजी के साथ पास आकर सुनने लगा। पूँटी के मुँह में जो आया, वही कह कर वह भाभी से लगातार जीवित रहने के लिए चिरौरी करने लगी।

अब की विराज की दोनों आँखों से बहकर बड़ी-बड़ी आंसू की बूंदें गिर पड़ीं। छोटी बहू ने अच्छी तरह सँभालकर उसके आंसू पोंछे और पूँटी को खींचकर अलग किया। पूँटी छोटी बहू की छाती में मुँह छिपाकर सबको रुलाती हुई फूल-फूलकर रोने लगी।

बहुत देर बाद बिराज उखड़े हुए गले से बार-बार कहने लगी—रो मत पूँटी, सुन।

नीलांबर आड़ में खड़े होकर सुनने लगा, उसने जान लिया कि बिराज का चैतन्य सम्पूर्ण लौट आया है, उसकी यन्त्रणा का अन्त हो गया है। विराज कहने लगी—विना समझे उनको दोष न दे पूँटी। उनका कैसा सूक्ष्म विचार है, तो भी कितनी दया है—इस बात को आज मुझसे बढ़कर कोई नहीं जानता। मरना ही मेरा जीना है—यह मेरे न रहने पर ही तुम लोग समझोगे। और तू कहती है कि एक हाथ और एक आँख उन्होंने ले ली है, सो तो दो दिन आगे-पीछे शरीर नष्ट होता ही। किन्तु इतनी सी सज़ा देकर उन्होंने मुझे तुम लोगों की गोद में लौटा दिया—यह तुम लोग किस तरह भूलोगे पूँटी ?

"खाक लौटा दिया है !" कहकर पूँटी रोती ही रही।

भगवान् की दया या सूक्ष्म विचार के एक अक्षर पर भी उसने विश्वास

नहीं किया, वल्कि यह सव उसे घोर अत्याचार और अविचार ही जान पड़ने लगा। कुछ देर वाद विराज ने कहा—पूँटी, वहुत देर से नहीं देखा, जरा एक वार अपने दादा को तो वुला दे।

नीलांवर आड़ में खड़ा ही था उसके पास आते ही छोटी वहू विछौना छोड़कर खड़ी हो गई। नीलांवर ने सिरहाने वैठकर स्त्री का दाहिना हाथ सावधानी से उठाकर अपने हाथ में ले लिया और वह नाड़ी देखने लगा। सचमुच विराज में अव कुछ वाकी न था। नीलांवर ने इसके पहले ही यह अनुमान कर लिया था कि वह वुखार के ज़ोर से इतनी वातें कर रही है और उसके उतरने के साथ ही वहुत सम्भव है कि सव समाप्त हो जाय। इस समय नाड़ी देखकर भी उसने यही समझा।

विराज ने कहा—खूव हाथ देखो।—कहकर ही वह हँस पड़ी।

सहसा वह यह मर्मभेदी परिहास कर उठी। इसी को लेकर यह इतना सव अनर्थ हुआ है, यह वात सभी को याद आ गई। वेदना से नीलांवर का मुख विवर्ण हो गया। जान पड़ता है, विराज ने भी यह देख पाया। उसने फौरन पछताकर कहा—ना, ना, यह वात मैंने नहीं कही। सत्य ही कहती हूँ, अव कितनी देर है?

इतना कहकर, चेष्टा करके अपना सिर स्वामी की गोद में उठाकर रख दिया। फिर वोली—सवके सामने और एक वार तुम कहो कि मुझे क्षमा कर दिया!

रुँधे स्वर में 'किया है' कहकर नीलांवर ने हाथ से अपनी आँखें पोंछीं।

विराज क्षण भर आँखें मूँदे पड़ी रही। फिर धीरे से कहने लगी—जानकर या अनजाने इतने दिन तुम्हारी गिरिस्ती करने में न जाने कितने अपराध और ग़लतियाँ मैंने की हैं—छोटी वहू, तुम भी सुनो, पूँटी, तू भी सुन दीदी, तुम लोग सव भूलकर आज मुझे विदा करो। मैं जाती हूँ। इतना कहकर वह हाथ वढ़ाकर स्वामी के चरण खोजने लगी। नीलांवर ने सिर-हाने का तकिया हटाकर पैर ऊपर उठा दिये। विराज हाथ से वार-वार लगातार उसके पैरों की रज अपने माथे में लगाती हुई वोली—मेरा सव दुःख इतने दिन वाद सार्थक हुआ। और कुछ नहीं है। देह मेरी शुद्ध निष्पाप है। अव चलती हूँ, जाकर राह देखती रहूँगी।

कहकर वह करवट लेकर पति की गोद में मुँह छिपाकर अस्फुट स्वर में बोली—इसी तरह मुझे लिये रहो, कहीं जाना नहीं। इतना कहकर चुप हो गई। वह बिलकुल थक गई थी।

सभी सूखा मुँह लिये बैठे रहे। रात के बारह बजने के बाद से वह प्रलाप करने लगी। नदी में फाँद पड़ने की बात—अस्पताल की बात—निरुद्देश यात्रा की बात—यही सब। किन्तु उन सभी बातों से अति उत्कट एकाग्र पति-प्रेम था। घड़ी भर के भ्रम ने किस तरह उस सती-साध्वी को जलाया—पीड़ा पहुँचाई, केवल यही।

इन कई दिनों से विराज के सामने ही बैठकर नीलांबर को भोजन करना पड़ता था। उस दिन बीच-बीच में पूँटी को पुकार कर, छोटी बहू को पुकार कर बकने लगी। उसके बाद सवेरे के समय पुकारना बंद हो गया और ऊर्ध्वश्वास चलने लगी। फिर उसने किसी की ओर देखा नहीं, फिर उसने किसी से कुछ कहा नहीं। स्वामी की देह पर सिर रखकर सूर्योदय के साथ-साथ ही दुखिया के सारे दुःखों का अन्त हो गया।

० ० ०

INSTITUTE ... SIMLA
Acc. No. 77816
Date 12/3/92

शरत् साहित्य

सुरुचिपूर्ण सजीव
भारतीय जीवन दृष्टि
का साहित्य पढ़िए
और इष्ट मित्रों को
उपहार में भेंट
दीजिए ।